ओ३म्

शताब्दी के अवसर पर—

...ौलिक भेद

(दूसरे मत मतान्तरों से वैदिक धर्म के मौलिक भेद)

प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

Rs 2/ १९७५

लेखक परिचय

जन्म 1932 ई० में। ग्राम मालोमहे ज़िला स्यालकोट पश्चिमी पंजाब।

शिक्षा :— स्यालकोट, लेखराम नगर (कादियां), जालन्धर हिसार व चण्डीगढ़ में हुई। बाल-काल से ही वैदिक धर्म के प्रचार की धुन। विद्यार्थी जीवन से ही गद्य पद्य लिखने तथा स्वाध्याय की रुचि। पं० लेखराम जी के बलिदान, स्व० स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ व श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के व्यक्तित्व के विशेष प्रभाव से साहित्य सेवा संकल्प।

1954 ई० से अध्यापन कार्य।

1957 ई० में पंजाब के हिन्दी सत्याग्रह में सक्रिय भाग, जेल यात्रा। सत्याग्रह के पश्चात् गुरुद्वारा सिग्रेट काण्ड के झूठे आरोप में पुन: बन्दी। अमानुषिक यातनायें भोगीं।

1952 ई० से दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र पत्रिकाओं में हिन्दी उर्दू में नियमित रूप से लिखते हैं। बीस के लगभग पुस्तकें छप चुकी हैं। अन्य भाषाओं में भी कुछ पुस्तकों व लेखों का अनुवाद छपा है।

देश के विभिन्न भागों में वैदिक धर्म प्रचारार्थ दूर दूर तक यात्राएं की हैं।

केरल में वैदिक धर्म प्रचार व शुद्धि के लिए आर्यन यूथ लीग की स्थापना व प्रसार में विशेष उत्साह व सहयोग।

ओ३म्

आर्य समाज स्थापना शताब्दी के अवसर पर—

मौलिक भेद

(दूसरे मत मतान्तरों से वैदिक धर्म के मौलिक भेद)
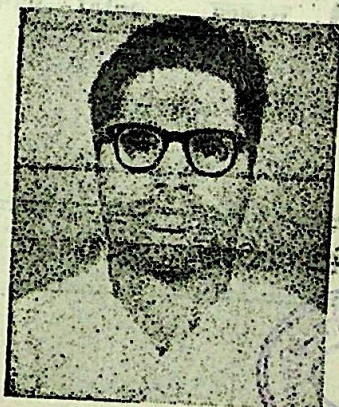
लेखक :—

प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

प्रकाशक :—

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, प्रकाशन मन्दिर

आर्य युवक समाज, अबोहर।

द्वितीयावृत्ति—2000

मूल्य रु० 2-75

प्रथम वार ... जून 1968 ई० प्रति 1000

द्वितीय वार... महर्षि बोध पर्व वि० सम्वत् 2031 प्रति 2000

मूल्य { अजिल्द 1–75 रुपये
सजिल्द 3–00 रुपये }

मुद्रक :— सिडाना इलैक्ट्रिक प्रैस, अबोहर ☎ 506

प्रकाशक :—
पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, प्रकाशन मन्दिर
आर्य युवक समाज, अबोहर।

ओ३म्

समर्पण

मैं अपनी
इस पुस्तक को
अनादि वेद ज्ञान के लिए,
महर्षि दयानन्द के उद्यान के लिए
अडिग श्रद्धा रखनें वाले,
अपने
पूज्य पिता
श्रीमान् महाशय जीवनमल जी
की
मधुर, जीवन दायिनी
एवं
प्रेरणाप्रद स्मृति में
सादर समर्पित
करता हूँ।
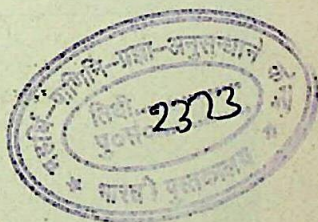
उनका ऋणी
राजेन्द्र पाल 'जिज्ञासु'

ओ३म्

श्री ____________________

____

जी को

____

____

की ओर से

____

के अवसर पर सप्रेम भेंट।

प्रचारोपयोगी, ठोस साहित्य के प्रकाशनार्थ आप 151–00 रुपये देकर हमारे प्रकाशन विभाग के सदस्य बनिए।

आपका नाम प्रत्येक प्रकाशन में छपेगा और उसकी एक प्रति आपको निःशुल्क भेंट की जाएगी। इस प्रकार आपके घर में एक सुन्दर वैदिक पुस्तकालय स्वयंमेव ही बन जाएगा।

—प्रकाशन मन्त्री

प्राक्कथन

लेखक:-

पूज्यपाद स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती

(पूर्व डा० सत्यप्रकाश जी *D. Sc., F. N. I.*)

प्रो० श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' लब्ध प्रतिष्ठ लेखक हैं, और उनकी लेखनी से लिखी गई 'मौलिक भेद' पुस्तक आर्यसमाज के दार्शनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करने में अनूठी है। ईश्वर को मानने वाले अनेक वाद हैं, स्तुति प्रार्थना उपासना इनके प्रति भी वहुतों की निष्ठा है।
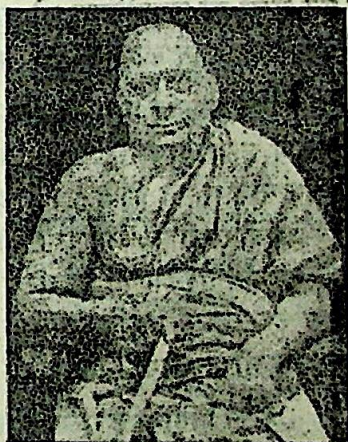
सुख दुःख पाप पुण्य, स्वर्ग नर्क, ये भी साहित्य के पुराने परिचित शब्द हैं किन्तु महर्षि दयानन्द के साहित्य में इन शब्दों द्वारा जिन दार्शनिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति हुई है, उनका स्रोत प्राचीनतम होते हुए भी नवीनतम है; और बुद्धिवादी युग में इस अभिव्यक्ति को लेकर ही हम आगे वढ़ सकते हैं। आप इस पुस्तक को पढ़ें, और आपकी समझ में आ जावेगा कि महर्षि के सिद्धान्तों में कितनी गम्भीरता है, और दूसरों की मान्यताओं से इसमें कितना वैभिन्य। महर्षि का दृष्टिकोण आपको नवीन प्रतीत होगा, यह भी एक परम सत्य है कि यही हमारा प्राचीनतम दृष्टिकोण है।

भूमिका

जब मैं शोलापुर में था तो मासिक 'परोपकारी' अजमेर के लिए मैंने 'मौलिक भेद' शीर्षक से एक लेखमाला लिखी थी। उस लेखमाला का कुछ अंश साप्ताहिक 'आर्यगज़ट', 'वैदिक धर्म' व 'दैनिक प्रताप' आदि में प्रकाशित मेरे कुछ लेखों में भी छपा। केरल के 'आर्य भारती' मासिक में 'We Believe' शीर्षक से प्रकाशित मेरे एक लेख में भी इसी विषय की कुछ सामग्री थी। अनेक बन्धुओं ने इन लेखों की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की प्रेरणा दी।

मेरे सम्मुख प्रश्न यह था कि प्रकाशित कौन करे? आर्य-समाज में उपयोगी साहित्य खपाने के लिए भी स्वयं लेखकों को ही हाथ पांव मारने पड़ते हैं। मैं इस समस्या को समझते हुए भी अमर धर्मवीर श्री पं० लेखराम जी के अन्तिम आदेश का पालन करते हुए इस पुस्तक को विचारशील सज्जनों के सामने रखने का साहस कर रहा हूँ। वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार में यदि मेरी यह कृति कुछ भी उपयोगी सिद्ध हुई तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा।

जिन विद्वानों के ग्रन्थों से इस पुस्तक के लिखने में सहायता ली गई है। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। पुस्तक में भाषा व शैली आदि की जो भी त्रुटियां पाठकों को अखरें उनकी उपेक्षा करके वे वैदिक धर्म व दर्शन की विशेषताओं को समझकर वेदादेश का पालन करेंगे ऐसी मुझे आशा है।

अबोहर (पंजाब) राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

द्वितीय संस्करण की भूमिका

'मौलिक भेद' का प्रथम संस्करण 1968 ई० में प्रकाशित हुआ। दो वर्षों के भीतर ही समाप्त भी हो गया। *Radical Variations* के नाम से आचार्य श्री नरेन्द्र भूषण जी व श्रीयुत तरसेमकुमार जी आर्य ने इसका अंग्रेजी अनुवाद 1972ई० में केरल से प्रकाशित करवाया। वह भी अब समाप्त होने वाला है। 'मौलिक भेद' के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन की माँग बढ़ती गई। 1972 ई० में इसे प्रकाशित करने की कुछ व्यवस्था की गई। पूज्यपाद स्वामी श्री सत्यप्रकाश जी ने 22-2-1972ई० को अबोहर में इसका प्राक्कथन भी लिख दिया परन्तु किन्हीं कारणों से इसका प्रकाशन रुका रहा।

मूर्धन्य विद्वानों, लेखकों व पाठकों ने इसका स्वागत किया। हम सब के आभारी हैं। प्रभु कृपा व पूज्य महात्माओं के आशीर्वाद से अब इसका द्वितीय संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण पाठकों की भेंट करते हुए हमें हर्ष हो रहा है।

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी के ऐतिहासिक पर्व पर पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय प्रकाशन मन्दिर, आर्य युवक समाज अबोहर इसके प्रकाशन का प्रशंसनीय पुरुषार्थ कर रहा है।

श्रद्धानन्द बलिदान पर्व
2032 वि० संवत्

विनीत:–
राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

'स्मृति सुमन'

'श्रत् ते दधामि ।' सामवेद

यह पुस्तक मेरे पूज्य पिता श्री महाशय जीवन मल जी की मधुर स्मृति में प्रकाशित की जा रही है। वह कोई विद्वान नहीं थे, नेता नहीं थे और न ही वह किसी सभा संस्था के पद-अधिकारी थे। वह थे एक ग्रामीण आर्यसमाजी। उनका जन्म पोष मास विक्रम संवत् 1934 में मालोमहे ज़िला स्यालकोट (पश्चिमी पंजाब) में हुआ। वह केवल चालीस दिन के थे जब उनके मान्य पिता श्री धनीराम जी का देहान्त हो गया। उनका लालन पालन उनकी माता श्रीमती ज्वाली देवी द्वारा हुआ। उर्दू फ़ारसी की शिक्षा पांचवीं श्रेणी तक प्राप्त की। उनकी आगे पढ़ने की अकांक्षा पूर्ण न हो सकी।

युवा अवस्था में उनको वैदिक धर्मी बनने का गौरव प्राप्त हुआ। उन दिनों वैदिक धर्म को ग्रहण करना बड़े साहस का कार्य था। आर्यों का अपने बेगाने सब विरोध करते थे। फिर भी अपने ग्राम में वह सब से पहले आर्यसमाजी बने। गाँव के सब हिन्दू आर्यसमाज में सम्मिलित हो गए। गाँव में सबके पुरुषार्थ से आर्यसमाज का विशाल एवं भव्य मन्दिर निर्माण किया गया। मैं ने उत्तर और दक्षिण भारत में किसी कस्बा में भी कहीं वैसा समाज मन्दिर नहीं देखा। उस गांव के आर्यसमाज की चर्चा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के इतिहास में भी आती है।

यद्यपि मेरे पिता जी अल्प शिक्षित थे तथापि स्वाध्यायशील थे। उनका स्वाध्याय बड़ा विस्तृत और गहरा था। वह नियम पूर्वक स्वाध्याय करते थे। ऋषिकृत ग्रंथों में सत्यार्थप्रकाश ऋग्वेद आदि भाष्य भूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय आदि को उन्हों

ने कई बार पढ़ा। ऋषिकृत ग्रंथों के अतिरिक्त स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज, श्री स्वामी वेदानन्द जी, म० नारायण स्वामी जी महाराज, धर्मवीर लेखराम जी, मुनिवर गुरुदत्त जी, अमर धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी, श्री भाई परमानन्द जी, वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज, राष्ट्रवीर ला० लाजपत राय, श्री पं० चमूपति जी, आचार्य रामदेव जी, श्री पं० गंगाप्रसाद जी न्यायमूर्ति, श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, श्री पं० भगवद्दत्त जी, श्री स्वामी ब्रह्म मुनि जी, पं० मनसाराम जी, पं० रघुनन्दन शर्मा जी आदि सभी प्रमुख आर्य विद्वानों का हिन्दी उर्दू साहित्य उन्होंने ध्यान पूर्वक पढ़ा। मुसलमानों के विभिन्न सम्प्रदायों व ईसाइयत का भी पर्याप्त अध्ययन किया। उनकी माता का जन्म सिख परिवार में हुआ था और वह सिख थीं। अतः मेरे पिता जी सिख मत सम्बन्धी अच्छी जानकारी रखते थे। आर्यगजट, आर्यवीर, आर्य आदि आर्य पत्रों के नियमत पाठक थे। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जब प्लेग फैली तो उन्होंने रोगियों की बहुत सेवा की। मृतकों के दाहकर्म कराने में वह सब से आगे रहे। उनकी इस सेवा का गाँव में अच्छा प्रभाव पड़ा। उनकी संकल्प-शक्ति असाधारण थी। एक बार उनको पागल कुत्ते ने काटा। वह चाँदी का रुपया लेकर उसको कोयलों पर गर्म करते, जब रुपया अंगारों के समान लाल हो जाता तो अपनी टांग पर रखते। इस प्रकार जहां कुत्ते ने काटा था वह सारा मांस स्वयं ही जला दिया।

जब गाँव का समाज मन्दिर बनने लगा तो एक कवर का वृक्ष भवन की लकड़ी के लिये खरीदा गया। उस वृक्ष को सब से पहला कुल्हाड़ा आप ने मारा। जब उस वृक्ष को काट कर गड्डे में डाल कर गाँव में लाया जा रहा था तो आपका पांव गड्डे के नीचे आकर कुचला गया। आपको कई दिन कष्ट रहा परन्तु आप ने कभी आह तक न की ताकि लोगों में कहीं यह मिथ्या भ्रम न फैल जाय

कि मरे हुए पीर के अभिशाप से उनका पात्र कुचला गया है।

आप 'जय-जय पिता परम आनन्द दाता'

'तुम हो प्रभु चाँद मैं हूँ चकोरा'

'तेरी शरण की ओट गही' आदि भजनों को वड़ा पसन्द करते थे। आर्यसमाज लेखराम नगर (कादियां) में जब प्रसिद्ध आर्य विद्वाय श्री पं० गंगाराम जी ये भजन गाते तो वह वड़ी श्रद्धा-भक्ति से इनका आनन्द लूटते। आर्यसमाज के पुराने उपदेशक दिवंगत श्री पं० हीरानन्द जी का सत्संग उन को वर्षों प्राप्त रहा। हमारा गांव मुसलमान सय्यदों का गढ़ था। आर्यसमाज की कृपा से मेरे पिता जी भूत-प्रेत, कवर, पीर, जादू-टूने आदि पाखण्डों से सर्वथा निर्भय थे। कोई व्यसन भी न था।

वेद में आता है,

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृह्यन्ति।
यन्ति प्रमादम् अतन्द्राः ॥

देव प्रमादी से प्यार नहीं करते। श्रम करने वाले को चाहते हैं। मेरे पिता जी ने आजीवन श्रम को जीवन का श्रृंगार बनाया। 1958 में गुरुद्वारा सिगरेट केस में पुलिस द्वारा मेरी अमानुषिक पिटाई पर लेखराम नगर में श्री मेहर चन्द पोस्टमास्टर को उन्हों ने कहा "यदि मैं श्रम न करता तो 'जिज्ञासु' भी पुलिस की मार से वचकर न आता।"

पोष मास संवत् 2020 (23-12-1962 ई०) को उनका नरवाना (हरियाणा) में देहान्त हुआ। मेरे लिए उन की सब से वड़ी देन ऋषि दयानन्द की पावन वैदिक विचारधारा ही है। मेरी सारी दुर्बलताओं की उपेक्षा कर वह इस बात पर सन्तोष व गौरव अनुभव करते थे कि मुझे ऋषि मिशन की धुन है। मैं भी समझता

हूँ कि यदि पिता जी ने वैदिक ज्योति न दी होती तो मैं विद्यानुरागी न होता। व्यसनों में फंसा होता। न जाने मैं किस गर्त में होता। जीवन में यदि कुछ पाया है तो इस जीवन दायनी विचारधारा के कारण पाया है—जो मुझे मेरे पिता जी ने घुट्टी में पिलाई। जीवन की उसी सर्वश्रेष्ठ निधि को उन्हीं की प्रेरणा से लुटाने लगा हूँ।

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

मौलिक भेद पर कुछ सम्मतियां

1. यशस्वी वेदज्ञ पूज्यपाद पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड
(देवमुनि वानप्रस्थ)

आपका 7-9-68 का पत्र पूर्व प्रषित आपकी दो उत्तम रचनाओं "मौलिक भेद" और "*Fundamentals of Vedic Teachings*"की एक एक प्रति सहित प्राप्त हुआ। तदर्थ धन्यवाद। आपकी दोनों पुस्तकें बहुत अच्छी हैं। 'मौलिक भेद' में आपने मतमतान्तरों से वैदिक धर्म का जो भेद दिखाया है वह आपके गम्भीर अध्ययन और मनन को सूचित करता है। जिसे देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आर्य जगत के उत्तम मनीषियों, स्वर्गीय पं० चमूपति जी, मान्य पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी, श्री पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी, डा० सत्यप्रकाश जी के समुचित, प्रभावशाली उद्धरण स्थान स्थान पर देकर आपने पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ा दिया है।......

...आपकी यह पुस्तक 'मौलिक भेद' बहुत अच्छी लगी। मैं इसका युवक तथा शिक्षित वर्ग में विशेष प्रचार चाहता हूँ। अंग्रेजी की '*Fundamentals of Vedic Teachings*' भी बहुत अच्छी है। बड़ी स्पष्टता से आपने वैदिक मन्तव्यों का प्रतिपादन किया है।"

2. सार्वदेशिक सभा के भूतपूर्व मन्त्री, भारत विख्यात वैद्य एवं लेखक कविराज हरनाम दास लिखते हैं,—

"आपके पुरुषार्थ से आर्यसमाज अपने को धन्य मानता हैं।"

3. श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के विद्वान, सुशिष्य श्री पं० राधे मोहन जी आर्य—

"आपकी पुस्तक अभी अभी बड़े मनोयोग पूर्वक आद्योपान्त पढ़ गया। पूज्य उपाध्याय जी ने पहले भी इसे पढ़ने के लिए कहा

मुझे इस पर अपनी सम्मति देने के लिए कहा था किन्तु समयाभाव या प्रमादवश इसे सरसरी दृष्टि से पढ़ लिया था किन्तु अब मैंने पढ़ लिया है तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई क्योंकि आर्यसमाज में आज किस्से कहानी या वैदिक सिद्धान्तों पर न लिखने वालों का बाहुल्य है किन्तु वैदिक सिद्धान्तों पर सूक्ष्म दृष्टि से यथा-तथ्य रूप से लेखकों की कमी है। इस स्थिति में आप जैसे युवक के द्वारा सिद्धान्तो पर तथ्यता को दृष्टि में रखते हुए जो 'मौलिक भेद लिखी गई है वह प्रशंसनीय है। और निराशावादियो के मुंह पर गहरा तमांचा है जो कहते रहते हैं कि आज युवकों की आर्य सिद्धान्तों व धर्म प्रचार की ओर रुचि नहीं है और आर्य जगत से तत्वदर्शी विद्वान समाप्त हो गए हैं। मेरी तो दृढ़ आस्था है कि दयानन्द की फुलवारी कभी सूखने नहीं पाएगी और समय-समय पर उद्भट विद्वान आर्यसमाज में जन्म लेते रहेंगे।......

...मैं इसके कई स्थलों को कई-कई बार पढ़ गया। क्योंकि वे इतने ममस्पर्शी तथा सुधारात्मक व्यंग्य थे कि जिसे पढ़ने में मज़ा भी आता था।......

...मेरी सम्मति है कि 'मौलिक भेद' में वैदिक एवं अवैदिक सिद्धान्तों की युक्ति युक्त मर्मस्पर्शी व हृदयग्राही समालोचना की गई है। तुलनात्मक विवेचन की शैली रोचक एवं ज्ञानवर्धक है। वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार में विशेष सहायक हो सकती है। यदि इसका अंग्रेज़ी में भी अनुवाद हो सके ता उत्तम रहेगा।"

4. श्री स्वामी विद्यानन्द विदेह के मासिक 'सविता' की सम्मति

"पुस्तक तर्क-प्रमाण पुरस्सर, प्रखर एवं ओजस्वी मस्तिष्क से प्रसूत तथा मननीय ।"

पहला अध्याय

ईश चर्चा

वैदिक धर्म व मत मतान्तरों में मौलिक भेद क्या है ? इस पर मैं पर्याप्त समय से विचार करता आया हूँ। मुझे जो कुछ समझ में आया है वह विचारशील सज्जनों की भेंट करता हूँ।

प्रथम मौलिक भेद यह है कि मत-मतान्तर अपनी मान्यताओं को मानते तो हैं उन पर मनन नहीं करना चाहते। मनन करते ही नहीं। मनन को तो अवैदिक मतों में कोई महत्व ही नहीं। मतों में हृदय के लिए तो स्थान है मस्तिष्क के लिये नहीं।

ईश्वर का स्वरूप

ईश्वर के ही स्वरूप को लीजिये। मत-मतान्तरों ने ईश्वर पूजा पर बल तो बहुत दिया परन्तु ईश्वर का स्वरूप क्या है इस पर विचार ही नहीं किया जाता। इसका परिणाम यह है कि मूल में ही भूल हो जाने से मानव समाज का अहित व अनिष्ट हो रहा है।

इस्लाम और ईसाई मत में ईश्वर को एक देशी माना गया है। पौराणिक भी ऐसी मान्यता रखते हैं। ऐसा मानते हुए भी सब मतवादी लोग संसार में ईश्वर प्राप्ती के लिये पूजा उपासना पर बल देते हैं। यह मतवादी लोग भगवान् को चौथे या सातवें आकाश, क्षीर सागर व कैलाश पर मानते हैं। फिर भला वह यहाँ कैसे मिलेगा ? अभाव से भाव व भाव से अभाव नहीं हो सकता। यह दर्शन व विज्ञान का सर्वसम्मत सिद्धान्त है। अतः मतवादियों द्वारा जगत में प्रभु-प्राप्ति का प्रयत्न उनकी अपनी मानी हुई मान्यताओं के अनुसार व्यर्थ है। जब मतों का ईश्वर यहाँ है ही

नहीं तो जगत में वह मिलेगा कैसे? यह लोग प्रश्न-कर्त्ता को उत्तर माँगने का भी अधिकार नहीं देते।

पौराणिक तो शोर ईश्वर पूजा का मचाते हैं और करते मूर्ति पूजा हैं। इसका तो नाम ही मूर्ति पूजा है। यह ईश्वर पूजा कैसे हो गई ? यह शंका मत करो। वेद की अनादि वाणी परमेश्वर का स्वरूप इन शब्दों में बताती हैं:–

'व्याप पुरुष'[1]

अर्थात्:– प्रभु सर्वव्यापक है।

'स ओत प्रोतश्च विभुः प्रजासु।'[2]

अर्थात्:– ईश्वर प्राणियों में ओत प्रोत है।

सर्वव्यापक ईश्वर ही इस विश्व में प्राप्त किया जा सकता है। जो यहां है ही नहीं वह यहाँ मिलेगा कैसे ? ऊपर बताया जा चुका है कि पुराणी किरानी व कुरानी लोग ईश्वर को क्रमशः क्षीर सागर, कैलाश पर्वत, चौथे व सातवें आसमान पर मानते हैं अतः उनकी प्राप्ति के लिये इन मतों के मानने वालों को वहीं जाना चाहिए जहां उसका निवास है। वैदिक धर्म ईश्वर को एक देशी नहीं, सर्वव्यापक मानता है। यह वैदिक मान्यता माने बिना मतवादियों की पूजा उपासना निरर्थक ही है।

वेद ईश्वर को सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक और निराकार मानता है। ईश्वर साकार हो ही नहीं सकता। वायु में, जल में, लोक लोकान्तरों में, अनेक छोटे बड़े प्राणी हैं। कितने ही जीव जन्तु हैं जो हम आँखो से दिखाई भी नहीं देते। यदि ईश्वर को साकार माना जाए तो छोटे छोटे कीट पतंगों के शरीरों का निर्माण साकार ईश्वर ने कैसे किया ? निराकार ईश्वर बड़े से बड़े और

---

1. अथर्व 20-131-17 2. यजु० 32-8

छोटे से छोटे शरीर व पदार्थ का निर्माण बिना किसी कठिनाई के कर सकता है। वह हथनी व तितली दोनों के गर्भ में व्यापक है।

ईश्वर पर आश्रित नहीं

मत मतान्तर ईश्वर को सृष्टि का रचियता तो मानते हैं परन्तु ईश्वर को पर–आश्रित बना देते हैं। उसकी सृष्टि उसके आधीन नहीं उसके दूतों व पूतों की दया पर है। और कहीं कहीं यह भी मानते हैं कि 'ईश्वर सब कुछ है', 'ईश्वर जो चाहे सो करे' 'ईश्वर ही सब कुछ करता है। और कभी कहते हैं ईश्वर ही 'सब कुछ कराता है।'

ईश्वर नियन्ता है

अनादि वेद ईश्वर को 'ऋतस्य योनि मानता है। विश्व नियमों में बंधा है। नियन्ता ईश्वर है। 'ईश्वर जो चाहे सो करे' यह वैदिक मान्यता नहीं। ईश्वर 'जो चाहे' यह एक चापलूसी है, दार्शनिक सत्य नहीं। चापलूसी व सत्य का क्या सम्बन्ध? मतवादी ईश्वर की उपासना नहीं चापलूसी करते हैं। यह चापलूसी प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति को अखरती है।

एक मुसलमान कवि नज़ीर अकबर इलाहाबादी ने इसी मनोवृत्ति पर व्यंग्य कसते हुए अपनी एक लम्बी कविता में लिखा है:—

जो खुशामद करे खल्क उससे सदा राज़ी है।
सच तो यह है कि खुशामद से ख़ुदा राज़ी है।

ईश्वर न सब कुछ करता है, न सब कुछ कराता है।

वेद यह नहीं मानता कि ईश्वर सब कुछ करता है न ही वह सब कुछ कराता है। ईश्वर व जीव के कर्तव्य पर हम आगे कुछ विचार करेंगे। यहां यह जान लेना चाहिए कि ईश्वर के नियमों

को तोड़ा नहीं जा सकता। ईश्वर स्वयं भी अपने नियमों को नहीं तोड़ता। सृष्टि नियम तोड़ने की जीवों की कुचेष्टा का परिणाम दुःख के अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता। ईश्वर अपने सामर्थ्य से सृष्टि का संचालन करता है, पर-आश्रित नहीं। वेद कहता है:–

'विश्वस्य मिषतो वशी' (यह विश्व उसके वश में है)

दूतों पूतों के सहारे चलने का प्रश्न हो पैदा नहीं होता। वैदिक धर्म का मतों से यह एक मौलिक भेद है।

ईश्वर का ज्ञान व कर्म

वेद का अन्य मतों से एक मौलिक भेद यह है कि मत-मतान्तर ईश्वर के ज्ञान व कर्म में संगति नहीं मानते। मत-मतान्तरों में सृष्टि नियमों के विरुद्ध मान्यताएं, चमत्कारों में विश्वास और आदि सृष्टि में ईश्वरीय ज्ञान के आविर्भाव में अविश्वास अथवा आज उस (आदि सृष्टि के समय प्राप्त होने वाले ईश्वरीय ज्ञान) ज्ञान को अनुपयोगी मानना ये सब बातें ईश्वर के ज्ञान व कर्म की संगति न मानने का परिणाम नहीं तो क्या है?

ईश्वर की रचना, ईश्वर के ऋत व सत्य का दर्शन, इन मतवादियों के लिये उसकी महती महत्ता का प्रमाण नहीं। उसके नियमों का टूटना अथवा तोड़कर दिखाना अर्थात् चमत्कार ही किसी व्यक्ति को किसी मत में लाने की मुख्य युक्ति है। मत-मतान्तरों में सृष्टि नियमों को तोड़कर दिखाने का दावा करने वाला व्यक्ति धार्मिक व आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा है। वैदिक धर्म में बड़प्पन की कसौटी नियम का पालन है, उल्लंघन नहीं। वैदिक ऋषि ईश्वर के नियमों का पालन करने वाले, उसके नियमों का प्रचार करने वाले, उसके ज्ञान का प्रकाश व प्रसार करने वाले होते हैं। वे परमेश्वर के नियम तोड़ने वाले नहीं होते। वेद इसी

को कल्याण-मार्ग मानता है। श्रुति का वचन हैः—

'सुगा ऋतस्य पन्थाः।'

ऋत का मार्ग सरल होता है। वेद की आज्ञा हैः—

'ऋतस्य पथ्या अनु।' (ऋत के मार्ग पर चल।)

जो लोग चमत्कारों में विश्वास रखते हैं उनसे हमारा प्रश्न कि क्या चमत्कार सृष्टि-नियम के अनुकूल हैं या प्रतिकूल? महान् आर्य दार्शनिक श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखते हैंः—

The occurrence of an un-natural phenomenon is a contradiction of terms. If it occurs, it is natural; if it is natural it must occur. Then, is it anti-natural? No. Who can defy nature successfully?[1]

वेद का सिद्धान्त है कि ईश्वर नित्य है, उसका ज्ञान नित्य है और उसका कर्म भी नित्य है। जहाँ ईश्वर का नियम टूटा समझो वहाँ उसकी सत्ता का ही अभाव हो गया। एक विद्वान का कथन है कि "नियम के अभाव में मैं यह भी जान नहीं सकता कि भूख कैसे मिटती है। सम्भव है आज खाना खाने से मिटे, कल गाने से, परसों रोने से मिटे।"

---

1. Superstition Page 13.

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषय ददितारः स्याम। सा प्रथमा संस्कृतर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥[1]

हे दिव्य शक्तियों के भण्डार प्रभो ! हम निरन्तर अबाध होकर बहने वाले तेरे सुवीर्य और ऐश्वर्य और उससे प्राप्त होने वाली पुष्टि के देने वाले बनें। सबसे पहला वरण करने योग्य अथवा पाप से बचाने वाला सबको गर्मी और प्रकाश देकर आगे ले जाने वाला सब का हित चाहने वाला मित्र तू ही है। हम तेरी विश्व-कल्याण करने वाली विश्व की सर्वप्रथम संस्कृति—वेद की संस्कृति का वरण करें। हम धरा धाम पर शान्ति की यह धारा बहावें।

दूसरा अध्याय

ईश्वरीय ज्ञान

हमने ऊपर लिखा है कि आदि सृष्टि में परमेश्वर के ज्ञान के आविर्भाव में अविश्वास अथवा आज उस ज्ञान को अनुपयोगी मानना यह सब बातें ईश्वर के ज्ञान व कर्म की संगति न मानने का परिणाम हैं।

वैदिक धर्म की मान्यता है कि परमेश्वर ने आदि सृष्टि में ज्ञान का प्रकाश चार ऋषियों की हृदय रूपी गुहा (*cave-like heart*) में किया। वेद स्वयं कहता है :—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥

1. यजुर्वेद 7-14

वेद का प्रकाश हुआ, वेद नाज़िल नहीं हुआ

मत मतान्तर ईश्वर को एक देशी मानते हैं अतः वे ज्ञान के प्रकाश की वजाय 'इलहाम का नाज़िल होना' मानते हैं। 'नाज़िल' का अर्थ है उतरना। ईसाई व मुसलमान भाई ईश्वर को चौथे व सातवें आसमान पर मानते हैं इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि वे 'ज्ञान के उतरने' में विश्वास करें। वे ये भी मानते हैं कि अल्लाह अपने नवियों को अपने दूतों द्वारा ज्ञान पहुँचाता है। वेद ईश्वर को सर्वव्यापक मानता है। इसलिए वैदिक मान्यता के अनुसार ईश्वर ने किसी दूत की सहायता के विना ही ऋषियों की हृदय गुहा में ज्ञान का प्रकाश किया।

पैग़म्बरवाद व ईश्वरीय ज्ञान

इस्लाम आदि मतों का 'पैग़म्बरवाद' भी ईश्वर को एकदेशी मानने के कारण पैदा हुआ। पैग़म्बर का अर्थ है पैग़ाम या सन्देश लाने वाला। सन्देश दूर से लाया जाता है। समीप वाले को कुछ सुझाने या समझाने के लिये सन्देश भेजने की क्या आवश्यकता है? इस से स्पष्ट है कि पैग़म्बरवाद की नींव ईश्वर की सर्वव्यापकता में अविश्वास या यूं कहिये कि जगत से प्रभु की दूरी पर रखी गई है।

सृष्टि-नियम व ईश्वरीय ज्ञान

कुछ लोग आदि सृष्टि में ईश्वरीय ज्ञान के प्राप्त होने पर शंका करते हैं। हमारा उत्तर है कि सृष्टि ईश्वर का कर्म है। वेद उसका ज्ञान है। सृष्टि-रचना का नियम ही यह सिद्ध करता है कि ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश आदि सृष्टि में ही चाहिए। मनुष्य का नियम है *Necessity is the mother of invention.* अर्थात् आवश्यकता अविष्कार की जननी है। सृष्टि-नियम इसके विपरीत है। आवश्यकता से पूर्व ही परमेश्वर ने उसकी पूर्ति के साधन प्रदान किये यथाः—

मनुष्य बाद में पैदा हुआ पहले रहने के लिये धरती, पीने के लिये पानी, श्वास लेने के लिये वायु, खानपान के लिए अन्न फल व वनस्पतियाँ, दूध देने वाले पशुओं को भगवान ने बनाया। बच्चा जन्म के बाद रोता रहा और फिर मां के सतनों में दूध आया, ऐसा हम नहीं देखते। दूध आने के बाद बच्चा आया। सृष्टि-नियम यह है कि भगवान् आवश्यकता से पूर्व ही उसकी पूर्ति का सामान पैदा कर देता है। इसमें अपवाद नहीं है। इस सृष्टि नियम के अनुसार परमेश्वर ने आँख बनाने से पूर्व ही सूर्य बना दिया। इसी सृष्टि-नियम के अनुसार भगवान् ने जब बुद्धि दी तो बुद्धि के लिए प्रकाश आदि सृष्टि में दिया।

दैनिक जीवन में ज्ञान पहिले कर्म पीछे

हठ व दुराग्रह से कोई माने या न माने मन व मस्तिष्क सबका यही वैदिक सिद्धान्त मानता है। अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में लोकोक्ति है :-

Look before you leap.

भाव यह है कि कर्म से पूर्व ज्ञान आवश्यक है। एक लोकोक्ति है :-

Think before you speak.

अर्थात् पहिले सोचो फिर बोलो।

ये दोनों वाक्य मानव समाज के वैदिक सिद्धान्त में स्वाभाविक अडिग विश्वास को व्यक्त करते हैं। वैदिक सिद्धान्त यह है कि मानव ने जब सृष्टि में जन्म लिया तो उसके मार्गदर्शन और कल्याण के लिए ईश्वर ने वेद ज्ञान दिया।

कुछ लोग विकासवाद की दुहाई देकर कहते हैं कि मानव ने शनैः शनैः उन्नति की ओर उन्नति करते-करते धीरे-धीरे ज्ञान

प्राप्त कर लिया। कैसा उल्टा चक्कर है ? हम कहते हैं कि ज्ञान उन्नति के लिये आवश्यक है। ये कहते हैं उन्नति करके ज्ञान प्राप्त किया। मनोविज्ञान वैदिक सिद्धान्त को स्वीकार करता है। मनोविज्ञान यह मानता हैं कि प्रत्येक मानसिक व्यापार के तीन पहलू हैं। (1) Cognition (ज्ञान), (2) Affection (अनुभूति), (3) Conation (क्रिया)।

मनोविज्ञान का यह सिद्धान्त सारे विश्व के विचारकों को मान्य है। इस सिद्धान्त के अनुसार क्रिया से पूर्व अनुभूति और अनुभूति से पूर्व ज्ञान आवश्यक है। जब क्रिया से पूर्व अनुभूति और अनुभूति से पूर्व ज्ञान अनिवार्य है तो फिर विना ज्ञान के मानव ने उन्नति कैसे कर ली ?

परिवर्तनशील जगत के नियम अटल हैं

मतवादी आक्षेप करते हैं कि परिवर्तनशील संसार में मार्ग-दर्शन के नियम अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान भी समय-समय पर परिवर्तित होना चाहिये। ऐसा कहने वाले बंधु भूल जाते हैं कि मनुष्य के नियम वदलते हैं। इसका कारण यह है कि जीव अल्पज्ञ हैं। सर्वज्ञ ईश्वर के वनाए सृष्टि नियम नहीं वदलते। आज तक एक भी तो सृष्टि नियम नहीं बदला। सत्य न मरता है न जन्म लेता है। सत्य तो नित्य है। सब मानते हैं कि Truth never dies.

वेद ज्ञान अनादि है और देश व काल के बन्धन में नहीं। वेद सब के लिए है और सब युगों के लिये हैं। अंग्रेजी में व्याकरण का नियम है कि Direct से Indirect करते समय यदि किसी वाक्य में नित्य सत्य कहा गया हो तो उस वाक्य का काल नहीं वदला जाएगा। वह वाक्य सदा वर्तमान काल में ही रहेगा यथा Two and two make four. The earth moves round

the sun. Unity is strength. आदि आदि। यदि पूछा जाए कि इन का काल क्यों नहीं बदलता तो उत्तर मिलता है ये Eternal Truths (नित्य सत्य) हैं। सत्य काल के साथ नहीं बदलता। वह नित्य नई है। अथर्ववेद 10.8.23 में यही सिद्धान्त प्रस्तुत करते हुए भगवान् ने कहा है :—

सनातनमेनाहुरुताद्यस्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयो ॥

अर्थात् उसको सनातन कहते हैं जो आज भी फिर नया जैसा होता हो। दिनरात दोनों एक दूसरे के रूप में उत्पन्न हुआ करते हैं।

सत्य नित्य है, नूतन भी है

Byron ने भी इसी दार्शनिक सत्य को व्यक्त करते हुए लिखा है— "Tis strange but true; for truth is always strange; stranger than fiction."

भाव यह है कि सत्य पुराना होने पर भी सदैव नया है। इस को सब मानते हैं। वैदिक धर्म पुरातन है, सनातन है। यह ठीक है परन्तु मानव कल्याण का यही मार्ग है। जो नित्य बदलता है वह सत्य नहीं, जो सत्य नहीं वह मान्य नहीं, हितकर नहीं— मानव जाति का भला इसी में है कि हम असत्य को त्याग कर सत्य को ग्रहण करें।

बाईबल में वेद की महिमा

जून 1968 ई० की बात है। कपूरथला के आर्य बंधु श्री सुलक्षण कुमार जी के साथ मैं केरल में वैदिक धर्म प्रचार के लिए गया। चैंगवन्नम् में हम Seventh Day Adventist Church के पादरी श्रीयुत K. V. Chacko के घर गये। श्री पं० नरेन्द्र

भूषण जी तथा पं० गोविन्द भूषण जी भी साथ थे। श्री नरेन्द्र

जी ने परिचय कराया। धर्म चर्चा आरम्भ हुई तो पादरी महोदय ने इक़दम प्रश्न किया,

"Do you believe in a living God ?"

अर्थात् क्या आप जीवित परमेश्वर में विश्वास रखते हैं ?

मैंने झट उत्तर दिया,

"Yes, but not in an absentee."

अर्थात् हम आर्य लोग जीवित परमेश्वर (अजर, अजन्म, अमर, नित्य, अनादि, सत, चित्त व आनन्द स्वरूप) में विश्वास रखते हैं परन्तु हमारा ईश्वर अनुपस्थित नहीं। कहीं किसी आकाश पाताल, जल, पर्वत में किसी आसन या सिंहासन पर नहीं बैठा। पादरी महोदय को मेरे इस उत्तर ने झकझोर सा दिया। मैंने कहा यदि आप आज्ञा दें तो मैं एक प्रश्न करूं ? पादरी महोदय ने कहा, "कीजिए।" मैंने कहा बाईवल में आता है :—

"In the begining was the word and the word was with God, and the word was God."[1]

अर्थात् आराम्भ में शव्द था और ईश्वर के साथ शव्द था, और शव्द ईश्वर था।

पादरी महोदय ने कहा, "हाँ, वाईबल में ये वचन हैं।" तब मैंने पूछा word (शव्द) से यहाँ क्या अभिप्राय है ? पादरी महोदय बोले शव्द का अर्थ शव्द है। मैंने फिर पूछा 'आरम्भ में शब्द था; ऐसा बाईबल का कथन है। सृष्टि के आद वाला शब्द गया कहां ? बाईबल तो ईसा ने दिया। सृष्टि के आद का शब्द कहाँ है ? पादरी महोदय ने स्पष्ट कहा, "मुझसे यह प्रश्न आज

1. St. John, New Testament, Chapter I Verse I

तक किसी ने नहीं पूछा। न मुझे स्वयं कभी इस पर शंका हुई। मुझे इसका अर्थ ज्ञात नहीं।"

तब मैंने कहा, "मैं इसके अर्थ बताऊं?" पादरी की आज्ञा पाकर मैंने कहा कि बाईवल का लेखक आर्य वर्शन के पारिभाषिक शब्द 'शब्द' को समझा नहीं सका। वैदिक दर्शन में वेद प्रमाण को शब्द प्रमाण भी कहा जाता है। शब्द प्रमाण और भी हो सकता है परन्तु आरम्भ में तो स्वतः प्रमाण वेद ही शब्द प्रमाण था। अतः शब्द का अर्थ वेद ज्ञान है। बाईबल का यह कथन सत्य है कि सृष्टि के आद में वेद का प्रकाश हुआ।

फिर मैंने पूछा, "And the word was with God का क्या भाव है?" पादरी महोदय ने सरलता से मुझे ही इसका रहस्य समझाने के लिए कहा। मैंने कहा वैदिक दर्शन ही इस गुत्थी को सुलझा सकता है। वेद का सिद्धान्त है कि ईश्वर नित्य है। उसका गुण, कर्म स्वभाव भी नित्य है। वेद नित्य ईश्वर का नित्य ज्ञान है अतः उसका ज्ञान उसके साथ ही रहेगा। ईश्वर से उसका ज्ञान पृथक नहीं किया जा सकता। पादरी महोदय यह उत्तर सुनकर वड़े प्रसन्न हुए।

मैंने फिर पूछा, "And the word was God का क्या अभिप्राय है?" पादरी जी ने पुनः कहा, "आप ही यह रहस्य समझायें।" मैंने निवेदन किया कि वैदिक दर्शन यह रहस्य भी सरलता से समझाता है। आर्य धर्म में परमेश्वर को ज्ञान स्वरूप कहा गया है। वेद में इस भाव के अनेक मन्त्र आए हैं। उपनिषदों में भी बारम्बार परमेश्वर को ज्ञान स्वरूप कहा गया है। बाईवल के ये वचन ईश्वरीय ज्ञान की चर्चा कर हैं। यहां स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि ईश्वर ने सृष्टि के आद में अपने अनादि ज्ञान वेद

का प्रकाश किया। वैदिक धर्म से विमुख होने के कारण, गुरु

शिष्य परम्परा टूट जाने के कारण बाईबल वाले word (शब्द) का अर्थ न समझ सके परिणाम यह हुआ कि बाईबल के ये शब्द अपने आप में एक उलझन बन गये। यदि word का अर्थ शब्द है तो ईसाई बतायें कि 'आद में शब्द था' का क्या भाव है ? वह 'शब्द' कहां गय ? गुम क्यों हुआ ? वह 'शब्द' ईश्वर के साथ था और ईश्वर था, इसका क्या अर्थ? वह शब्द निरर्थक था या सार्थक? वह 'शब्द' था किसका ? किसके लिए था ? और क्यों कहा गया ?

निष्पक्ष विद्वानों को मानना पड़ेगा कि इसका भाव वही है जो हमने बताया है। केवल वेद ही सृष्टि के आद में अविर्भाव की घोषणा करता है और किसी भी ग्रंथ ने अपने आद में आने की बात नहीं कही। युक्ति व प्रमाण वेद के पक्ष में हैं। पादरी महोदय ने सहर्ष हमारा पक्ष स्वीकार किया।

अनादि वेद के सम्बन्ध में डा० गोकुलचन्द जी नारंग ने लिखा है :—

"The Vedas have stood like light-houses of truth and wisdom through the stress and storms of ages and have commanded the well-deserved allegiance and reverence of hosts of the wisest and holiest of men and women. All glory to those who, without any desire or hope of material gain, dedicated their whole lives to the study and preservation of every syllable of these monumental works in their pristine purity."*

"If permanent self-hood is an illusion, the notion of duty loses all its significance." (श्री र० रामानुजाचार्य)

* Glorious Hinduism.

तीसरा अध्याय

त्रैतवाद

ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने वाले अवैदिक मत मूलतः अद्वैतवादी हैं। वैदिक धर्म का इनसे मौलिक भेद यह है कि अनादि वेद त्रैतवादी हैं। यद्यपि इस्लाम व ईसाई मत शंकराचार्य जी के अद्वैवाद को नहीं मानते तथापि इन दोनों मतों की सृष्टि उत्पति सम्बन्धी मान्यता अद्वैतवाद का ही विकृत, अदार्शनिक या परिष्कृत रूप है। हैं ये भी अद्वैतवादी। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है मत मतान्तरों ने ईश्वर के स्वरूप को समझने का यत्न ही नहीं किया। केवल कल्पनाओं से कार्य लिया। सृष्टि उत्पति के विषय में अवैदिक मतों की बहुत सारी भ्रान्तियों का मुख्य कारण ईश्वर के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान न होना ही है।

अथर्ववेद में परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए आता है :—

'स एष एक एकवृदेक एव।'

अर्थात्—वह ईश्वर एक है निश्चय से एक ही है। वह एक वृत् है मिश्रण नहीं। अमिश्रित है। न कोई उससे बना है और न वह किसी से बना है। बस मत-मतान्तरों ने मूल में यही भूल कर दी। वे वैदिक-धर्म की दार्शनिक सच्चाई को न समझ सके। मतों ने 'ईश्वर सब कुछ है' यह कल्पित मान्यता अपना कर यह भ्रान्ति प्रसारित कर दी कि ईश्वर ने बिना किसी उपादान कारण के सृष्टि का सृजन कर दिया। फ़ारसी के एक कवि ने लिखा है :—

'हर चे बीनी वदां कि मज़हरे ओस्त।'

अर्थात्—जो कुछ तू देखता है यह जान ले कि सब उसी परमेश्वर की झांकी है, उसी से व्यक्त हुआ है। भारत के नवीन

वेदान्ती तो अद्वैतवादी होने के कारण ब्रह्म के अतिरिक्त जीव व प्रकृति की सत्ता नहीं मानते। इस्लाम व ईसाई मत भी सृष्टि के उपादान कारण प्रकृति की व जीव की स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते। ये दोनों मत जीव व प्रकृति को ईश्वर से पैदा हुआ मानते हैं।

इस भ्रान्ति ने बड़े-बड़े विचारशील लोगों को नास्तिक बना दिया है। प्रत्येक जिज्ञासु के मन में यह शंका उठती है कि सृष्टि की रचना कैसे हुई ? मतवादी उत्तर देते हैं परमेश्वर ने जगत को बनाया हैं। जब पूछा जाता है कि किससे बनाया तो उत्तर देते हैं अपने में से बनाया अथवा अपनी शक्ति से उसने अभाव से सृष्टि का सृजन किया। भारत के महान् क्रान्तिकारी व विख्यात विद्वान लाला हरदयाल एम० ए० इन्हीं भ्रम-मूलक विचारों के कारण नास्तिक बने। उन्होंने प्रश्न पूछा है कि यदि भगवान् ने सृष्टि का सृजन किया है तो फिर भगवान् को किसने जन्म दिया ? भगवान् कहाँ से आ टपका ? उसकी उत्पत्ति कब हुई ?

वैदिक धर्म का तो युक्तियुक्त उत्तर है कि 'परमात्मा, जीव व प्रकृति तीनों अनादि हैं। तीनों को किसी ने जन्म नहीं दिया। विज्ञान आज इस वैदिक सिद्धान्त को मान चुका है :—

Matter can neither be created nor it can be destroyed.

प्रकृति को न जन्म दिया जा सकता है न यह नष्ट की जा सकती है।

महान् वैज्ञानिक न्यूटन का मत

जगत्–प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन का गति का पहला सिद्धान्त यह है कि :—

"Everybody continues its state of motion or rest unless some external force is applied on it."

अर्थात्—प्रत्येक पदार्थ अपनी गति या विराम की अवस्था में रहता है जब तक उस पर कोई बाह्य बल कार्य न करे।"

जड़ प्रकृति गतिहीन है। यह गति नहीं कर सकती, यह विज्ञान व मनोविज्ञान दोनों को स्वीकार है। परन्तु विज्ञान मानता है कि सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि सब लोक गति करते हैं। Atom परमाणु में भी गति होती है। इस गति का कारण क्या है ? न्यूटन का कहना है कि जब तक बाहर से शक्ति न दी जाए जड़ वस्तुएं गति नहीं कर सकतीं। सारा संसार गतिमान है। परमाणु में भी गति है तो फिर बाहर से इनको कौन गति दे रहा है ? मनुष्य में तो वह सामर्थ्य नहीं। न्यूटन के अनुसार यह गति तो कोई और शक्ति दे रही है। वह सर्वशक्तिमान भगवान् है। वेद ने इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है :—

ओ३म् तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके तदन्तरस्य
सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥[1]

अर्थात्—वह ब्रह्म सब को गति देता है परन्तु स्वयं गति नहीं करता। वह दूर से दूर और निकट से निकट है। वह ब्रह्माण्ड के अन्दर और बाहर व्याप्त है। जब से प्रकृति है तब से परमाणुओं में गति है। प्रकृति कब से है ? विज्ञान वेद के साथ स्वर मिला कर कह रहा है प्रकृति न उत्पन्न हो सकती है न नष्ट हो सकती है अर्थात् अनादि है। जब प्रकृति अनादि है तो गति देने वाली शक्ति भगवान् को भी अनादि मानना ही पड़ेगा। वैदिक दर्शन ध्यान पूर्वक समझने से यह प्रश्न पैदा ही नहीं होता कि भगवान् को किस ने पैदा किया ? कब पैदा किया ?

हम वैदिक धर्मी जब कहते हैं कि परमेश्वर ने हमें पैदा किया है तो हमारा 'पैदा' का अर्थ अभाव से भाव नहीं। हम तो यह

1. यजुर्वेद 40-5।

मानते हैं कि जैसे कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है । जैसे लोहार लोहे से वस्तुएं बनाता है या खाती लकड़ी से कुर्सी बनाता है ऐसे ही परमेश्वर ने अनादि जीवों के लिये अनादि प्रकृति से इस सृष्टि का सृजन किया है । 'जन्म' क्या है ? इसका उत्तर महर्षि दयानन्द ने दिया है :— शरीर के संयोग का नाम 'जन्म' और वियोगमात्र को 'मृत्यु' कहते है ।" शरीर अनादि प्रकृति से निर्मित होता है और इसका संयोग अनादि जीव से जब होता है तो इसी को वैदिक धर्मी उत्पन्न होना मानते हैं ।

महान् विद्वान पं० गुरुदत्त विद्यार्थी का कथन

यदि यह माना जाए कि अभाव से भाव पैदा करने का सामर्थ्य ईश्वर में है तो महान् मनीषी पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी के शब्दों में कहना पड़ेगा—

"Hence there are two kinds of nothing firstly, the ordinary nothing from which nothing comes out, secondly, this peculiar nothing which gives rise to something. Now, what-so-ever has many kinds, is not nothing but something. Hence nothing which is of two kinds, is not nothing but something."*

अभाव दो प्रकार का हो गया । एक वह अभाव जिससे अभाव ही पैदा हो सकता है और एक वह अभाव जिससे भाव पैदा हो सकता है । जब अभाव के दो प्रकार मान लिये तो फिर यह अभाव नहीं किसी वस्तु का भाव हो गया ।

श्री शंकराचार्य आदि कुछ भारतीय दार्शनिकों के अनुयाइयों ने यह भ्रम फैला रखा है कि वेद आदि सत्य शास्त्र अद्वैतवाद का प्रतिपादन करते हैं । ऐसा कहने वाले सत्य की निर्मम हत्या करते हैं ।

* Wisdom Of The Rishis Page 261.

वेदान्त शास्त्र का वचन है :—

'जन्माद्यस्य यतः ।'

जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है वही ब्रह्म जानने योग्य है।

प्रश्न यह है कि यदि वेद तथा आर्ष ग्रंथों ने केवल ब्रह्म की ही सत्ता को माना है तो ब्रह्म द्वारा जन्म किसका होता है? स्थिति और प्रलय किस की ?

आर्य ऋषियों ने ईश्वर को सर्वज्ञ माना है। सर्वव्यापक माना है तथा सर्वशक्तिमान माना है। यदि ईश्वर के सिवाय किसी और की सत्ता ही नहीं तो ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान कहना, लिखना व मानना व्यर्थ है। महान् आर्य मनीषी श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने इसी विचार को व्यक्त करते हुए लिखा है :—

सर्वज्ञता का अर्थ क्या है ?

"What do these words omniscience. omnipresence and omnipotence mean ?" Instead of all-knower, all-present and all-powerful, you should say nothing-knower, nothing-pervader and possessor of no power. What did he know when there was nothing ? Where was he piesent when there was no where ? What does the superlative most powerful mean when there was none to compare with ?*

श्रद्धेय डाक्टर सत्यप्रकाश जी ने भी इसी प्रश्न पर विचार करते हुए एक सूक्ष्म तर्क उपस्थित किया है। वह लिखते हैं :—

* Philosophy of Dayanand Page 81.

"If there is nothing to change, mould or transform, the agency which does so loses the very significance as the changer, moulder or transformer."*

कुछ लोगों को आज अद्वैतवाद का फैशन हो गया है। वह समझते हैं कि अद्वैतवाद की चर्चा करके अथवा अद्वैतवाद में विश्वास व्यक्त करके वह दार्शनिक के रूप में महिमा प्राप्त कर सकते हैं। वह सोचते हैं कि इससे दार्शनिक जगत में बड़प्पन मिल जाएगा। ऐसा सोचने वालों से डाक्टर सत्यप्रकाश जी ने एक प्रश्न पूछा है :—

अद्वैतवादी से बड़ा शून्यवादी

If by reduction to unity, one can be a better philosopher. perhaps the still better would be he who reduces everything to an Absolute Zero. If the object of knowledge is non-existent, why not believe in the non-existence of the subject also."**

'माया' बिना ब्रह्म का कार्य नहीं चलता

भारत के अद्वैवादी कहा करते हैं कि ब्रह्म सत्य है जगत-मिथ्या है। जगत में ब्रह्म के अतिरिक्त जीव या प्रकृति की सत्ता को स्वीकार करना इन ब्रह्मवादियों की दृष्टि में भ्रम है। परन्तु जगत् की दार्शनिक शंकाओं का समाधान जब अकेले 'ब्रह्म' से वे नहीं कर पाते तो 'ब्रह्म' के साथ 'माया' को भी घसीट लाते हैं। डा० सत्यप्रकाश जी ने बहुत सुन्दर लिखा है :—

"Without the help of the indescribable Maya the neo–Vedantic doctrine can-not be substantiated."***

* A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand Page 261

** A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand Page 264-65

***

अर्थात्— व्याख्या न की जा सकने वाली 'माया' के विना नवीन वेदान्त का सिद्धान्त पुष्ट नहीं किया जा सकता।

श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय ने अद्वैतवादी नवीन वेदान्तियों के मत की अपनी छोटी वड़ी कई दार्शनिक पुस्तकों में वड़ी रोचक, सरल व सरस शैली में चर्चा की है। ये अद्वैतवादी जगत् को मिथ्या व स्वप्न कहते हैं। उपाध्याय जी ने लिखा है:—

किसान खेती करता है,
स्वप्न में नहीं जागते हुए

"The farmer who is exercising his best energy in tilling the soil and sowing seeds, knows well that the farm is a hard reality. He knows that by sowing the seeds and pursuing tillage he will in the end get the true harvest, not illusory like a dream object. Some of our philosophers constantly sang of their philosphy of dream, but common people of the world turned a deaf ear to their preachings. This is all good because thus the work of the world goes on as usual on the lower strata of life The spell of dream could grip only a few persons of higher position "*

इसका सारांश यह है कि कृषक जो पूरी शक्ति से हल चलाता है, खेती करता है वह भली भाँति जानता है कि खेत एक कठोर सत्य है। वह जानता है कि उसके परिश्रम का फल उसे एक वास्तविक फसल में मिलेगा। उसके परिश्रम का परिणाम एक स्वप्न या भ्रम के रूप में न होगा। हमारे कुछ तत्त्ववेताओं ने अपने 'स्वप्न दर्शन' के बहुत राग गाए परन्तु संसार के जनसाधारण पर

* The World As We View It. Page 6.

इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। यह अच्छा ही हुआ। इससे संसार का सारा व्यवहार ठीक रूप से चल रहा है। केवल कुछ उच्च वर्ग के लोगों पर ही स्वप्न का जादू है। साधारण जनता पर नहीं।

सृष्टि का स्रष्टा

"यदि परमाणुओं में मिलने का स्वभाव है तो वह कभी अलग न होंगे, मिले रहेंगे, यदि उनमें अलग-अलग रहने का स्वभाव है तो वह कभी मिलेंगे नहीं, इस प्रकार कोई वस्तु न बन सकेगी। यदि उनमें से कुछ का स्वभाव मिलने का है और कुछ का अलग रहने का, तो जिन परमाणुओं की अधिकता होगी उन्हीं के अनुकूल कार्य होगा अर्थात् यदि मिलने के परमाणुओं का प्राबल्य है तो वह सृष्टि को कभी बिगड़ने न देंगे। यदि अलग-अलग रहने वाले परमाणुओं का प्राबल्य होगा तो वह सृष्टि को कभी बनने न देंगे। यदि दोनों ओर से बराबर खींचातानी होगी तो किसी पक्ष को दूसरे पर विजय प्राप्त करनी कठिन होगी।

वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय अलग-अलग तथा मिलकर यही सिद्ध करती हैं कि इनका कारण एक चेतन शक्ति है।"*

राष्ट्ररक्षा, उपकार व सुधार कार्य जागने वाले करते हैं स्वप्न लेने वाले नहीं।

जो लोग संसार को स्वप्न ही समझते हैं उनको चाहिए कि वे चारपाई लेकर विश्राम करें। स्वप्न सोने वालों को आता है। सोये हुए लोग किसी देश व समाज का भला नहीं कर सकते। वे अन्याय, कलह, कुल्टाई व बुराई से लड़ाई नहीं लड़ सकते। बुराई से लड़ाई तो जागने वाले ही कर सकते हैं। श्री पं० गंगाप्रसाद जी

* आस्तिकवाद पृष्ठ 100 तृतीय संस्करण

उपाध्याय ने इसी प्रसंग में लिखा है :—

"Similarly if all the hardships of life are a mere dream, then the best remedy is to wait for the moment that our eyes are open and we come into wakeful state."*

अर्थात्— यदि जीवन के सब दुःख कष्ट केवल एक स्वप्न ही हैं तो फिर हमें उस घड़ी की प्रतीक्षा करनी चाहिये जब हमारे नयन खुले हों और हम जागृत अवस्था में हों।

व्यक्ति और समष्टि का कल्याण जागरण से ही होता है। ज्ञान, मान, आन, शान और धन धान्य उन्हीं को प्राप्त होते हैं जो जागते हैं। राजनीति शास्त्र की उक्ति है :—

'Eternal vigilance is the price of liberty.'

अर्थात्— निरन्तर जागरण ही स्वतन्त्रता का मूल्य है। कल्याणी वाणी वेद में आता है :—

त्रातारो देवा अधिवोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवारीसो विदथम् आ वेदम् ॥**

इस वेद मन्त्र में भी यही प्रार्थना की गई है कि बकवाद व प्रमाद हम पर शासन न करें। जीवन में सफलता इसके बिना सम्भव ही नहीं पर स्वप्नवादी यह रहस्य क्या जानें? जो लोग सृष्टि से पूर्व केवल एक ईश्वर ही की सत्ता मानकर चलते है वे मतवादी लोग इस प्रश्न का उत्तर देने से कतराते हैं कि यदि सृष्टि से पूर्व केवल एक ईश्वर की सत्ता थी तो उसने संसार की रचना क्यों की?

---

* The World As We View It, Page 7.

** ऋग्वेद 8.48.14

किसके लिए की ? रचना का उद्देश्य क्या है ? इन प्रश्नों का उत्तर इन मतों के पास है ही नहीं। क्या सृष्टि उसने अपने लिये बनाई या औरों के लिए? यदि अपने लिए बनाई तो उसमें क्या कमी थी? यदि औरों के लिये बनाई तो वे और कौन थे ?

इन मतों की सारी मान्यताएं मूल की इस भूल के कारण निर्मूल एवं निःसार हैं, परस्पर विरोधी हैं तथा अनेक संशय पैदा करने वाली हैं। इस्लाम व ईसाई मत ईश्वर को दयालु मानते हैं। दयालु कैसे ? वैदिक दर्शन से उत्तर उधार लेकर। ये अवैदिक मत इस शंका का उत्तर देते हैं कि परमेश्वर ने हमारे लिए अनेक पदार्थ बनाये हैं, हमारे कल्याण के लिए सारा संसार बनाया है अतः वह दयालु है परन्तु प्रश्न फिर भी वही बना रहता है कि 'हमारा कल्याण' यह कहने से पूर्व हमें यह बताया जाये कि 'हम कौन' ? हम कहाँ से आ गये ? जब केवल ईश्वर ही की एक अनादि सत्ता थी तो 'हमारे कल्याण' की खुजली उसके मस्तिष्क में कैसे होगई ?

श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय ने बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है :—

"First create a hungry soul, then let him cry of hunger, and then provide food for him. Why all this fun? Such a belief may be a pious musing but not a philosophy."*

अर्थात्— पहले भूखे जीवों को पैदा करके फिर भोजन प्रदान करना। यह क्या तमाशा है ? भले ही यह एक पवित्र विचार हो, परन्तु यह कोई दर्शन नहीं।

* Vedic Philosophy Page 9.

अन्य मतों व वैदिक धर्म में एक मौलिक भेद यह है कि अवैदिक मतों में ईश्वर को केन्द्रविन्दु माना गया हैं। जीव का कोई महत्त्व नहीं। जीव की सत्ता तो विवश होकर मतों को माननी पड़ती है। जीव की स्वतन्त्र सत्ता मतवादी नहीं मानते। जब मतों का भगवान् सृष्टि बना लेता है तो जीव बीच में धक्के से आ टपकता है या घुस जाता है। वैदिक धर्म में प्रकृति व जीव का अलग-अलग अस्तित्व है। इनकी सत्ता ईश्वर पर अवलम्बित नहीं। परमेश्वर सृष्टि का कर्त्ता है। जीव व प्रकृति का नहीं। जीव का वैदिक दर्शन में अपना महत्त्व है।

मत मतान्तरों में जीव की स्वतन्त्र सत्ता न होने के कारण मतवादियों के मन में स्वयं अनेक शंकायें हैं जिनका समाधान उनके लिये एक समस्या है। एक फ़ारसी कवि ने लिखा है :—

दरम्याने करे दरया तख्ता बन्दम करदायी।
बाज़ में गोई कि दामन तर मकुन हुश्यार बाश ॥

भाव यह है कि भगवान् अजगर-सम लहरों वाले संसार रूपी सागर में, मेरे साथ बोझ बांधकर तूने मुझे पैदा किया है और फिर कहता है कि सावधान रहना कपड़े न भीगें। अर्थात संसार में हम दुर्बल जीवों को तूने पैदा किया और हम से आशा करता है कि हम निष्पाप रहें, यह तेरी मूर्खता है।

पुरुष एक या अनेक ?

नवीन वेदान्त के कई रूप हैं। श्री शंकराचार्य का अद्वैतवाद श्री स्वामी रामतीर्थ से भिन्न है। कविवर रवीन्द्र का अद्वैतवाद डा० राधाकृष्णन से न्यारा है। कुछ अद्वैतवादी जीव को ब्रह्म का अंश मानते हैं। कुछ जीव को ही ब्रह्म मानते हैं। कुछ जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मानते हैं। वैदिक धर्म की यह मान्यता है कि पुरुष अर्थात् जीव असंख्य हैं।

एक विद्वान ने लिखा है 'अपनी बाबत तो किसी को सन्देह हो नहीं सकता। यह सन्देह ही पृथक् सत्ता (Individuality) का प्रमाण है।'

'क्या मेरे बिना भी कोई और है ? सारा जीवन व्यवहार अनेकवाद का पोषक है। लेख के लिए सामग्री, ज्ञान, लेखनी व पाठक चाहिएं। लिखते भी तो इसी लिए हैं कि दूसरे पढ़ें।'

'जीवन यात्रा सबकी एक साथ न आरम्भ हुई न समाप्त। क्रियायें भिन्न-भिन्न, क्रिया के साधन भिन्न, स्वभाव भिन्न, चरित्र भिन्न, कोई जीवन दूसरे की सर्वांश में प्रतिलिपि नहीं।'*

"In this world of action we start with difference, our rate of progress is different and consequently we die differently."**

संसार की कर्मभूमि में हम भिन्नता से आरम्भ करते हैं। हमारी प्रगति की गति भी भिन्न-भिन्न है और परिणाम स्वरूप हम मरते भी भिन्न-भिन्न प्रकार से हैं।

यदि जीव ब्रह्म का अंश है तो इसमें ब्रह्म के गुण क्यों नहीं ? जीव अल्पज्ञ है, ब्रह्म सर्वज्ञ है। यदि जीव ही ब्रह्म है तो पाप कौन करता है ? यदि जीव ब्रह्म है तो संसार में दुःख, द्वेष, क्लेश व पाप क्यों है ? इन प्रश्नों का उत्तर अद्वैतवाद के पास नहीं। जीव की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किये बिना संसार की पहेली समझ में नहीं आ सकती।

आज सारे विश्व में मानवीय अधिकारों की (Human Rights) विशेष रूप से मानव की स्वतन्त्रता की दुहाई बहुत दी

* डा० दीवानचन्द के दर्शन संग्रह के पृ० 40 का सारांश

** A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand

जाती है। प्रत्येक राजनैतिक दल व नेता दिन-रात स्वतन्त्रता का राग अलाप रहा है। स्वतन्त्रता किस के लिये ? उत्तर है मानव के लिये। मानव की स्वतन्त्रता के लिये सब शोर मचाते हैं परन्तु मानव की स्वतन्त्रता जीव की स्वतन्त्र सत्ता का सिद्धान्त माने बिना एक थोथा नारा है। महान् दार्शनिक श्री आचार्य चमूपति जी ने लिखा है :— "यदि एक मात्र परमात्मा सृष्टि में कारण हो तो पाप का बीज भी वही ठहरेगा। अतः जीव को अनादि स्वतन्त्रकर्त्ता मानना चाहिये। स्वतन्त्रता पैदा की जाए तो वह स्वतन्त्रता न होगी।"

"An unduly forgiving God has nothing to prevent Him from becoming at times unduly tyrannous. The latter possibility is simply a corolarry from the former presumption" (Pt. Chamupati ji)

चौथा अध्याय

पाप और पाप का फल

मतवादी मानते हैं कि उनकी मान्यता मानने से मनुष्य को पाप कर्म का दण्ड नहीं मिलेगा। मतवादी विश्वास मात्र रखने से व्यक्ति को मोक्ष अथवा स्वर्ग का अधिकारी मानते हैं। मत मतान्तर मनुष्यों को पाप के फल से बचाने का आश्वासन देते हैं। वेद की मान्यता इससे भिन्न है। वेद कहता है :—

'पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति'*

अर्थात् मनुष्य जैसा पकाता है वैसा खाता है। वेद का गम्भीर अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि वेद के अनुसार सृष्टि का सब से बड़ा सिद्धान्त 'कर्म फल' है। इसे कर्म फल सिद्धान्त कहिए या कर्मचक्रवाद कहिए।

श्री पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ने लिखा है :—

"भौतिक जगत् का आधारभूत नियम कार्य-कारण का नियम है। इसे सब कोई जानता है। कोई कार्य ऐसा नहीं हो सकता जिस का कारण न हो, न कोई कारण ही ऐसा हो सकता है जिसका कोई कार्य न हो। जिस कार्य का कारण नहीं वह कार्य नहीं, जिस कारण का कार्य नहीं वह कारण नहीं। यही कार्य-कारण नियम जब भौतिक जगत् के स्थान में आध्यात्मिक-जगत् में काम कर रहा होता है तब इसे कर्म का सिद्धान्त कहते हैं। कार्य कारण के भौतिक-नियम का आध्यात्मिक रूप ही 'कर्म' है।"**

---

* अथर्व 12.3.48

** आर्य संस्कृति के मूल तत्व

इस कर्म फल सिद्धान्त की सत्यता का इससे बड़ा प्रमाण क्या हैं कि प्रत्येक मनुष्य की कर्म में प्रवृत्ति है। प्रमादी से प्रमादी भी कुछ कर्म करता है। कुछ भी न करे तो भी खाता-पीता तो है। यह भी तो एक कर्म है। यदि कर्म फल सिद्धान्त मिथ्या होता तो किसी की भी कर्म में प्रवृत्ति न होती। श्री तुलसीदास ने लिखा है:–

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा॥

'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहिताः।'*
कर्म मेरे दायें हाथ में है और विजय बायें हाथ में।

इस सूक्ति का भाव भी यही है कि व्यक्ति अपने किये हुए कर्म के फल के उपभोग और उपयोग से वंचित नहीं रहेगा। व्यक्ति कर्म करे और उसे उसके श्रम का फल न मिले यह शोषण है। यह अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार है। कदाचार, शोषण व भ्रष्टाचार का उन्मूलन केवल वैदिक धर्म का कर्मफल सिद्धान्त ही है।

एक विद्वान ने लिखा है :—

"No act can ever fail to produce its result. Nor can any act produce anything but its true result. It is not possible to do a thing and escape its result."

अर्थात् यह हो नहीं सकता कि कोई कर्म अपना फल पैदा न करे। न ही यह सम्भव है कि एक कर्म अपने वास्तविक फल की बजाय कुछ और पैदा करे। यह असम्भव है कि कोई कर्म करके उसके फल के भोगने से बच निकले।

* अथर्ववेद 7.50.8

मतमतान्तरों और वैदिक धर्म में यह एक मौलिक भेद है। कर्म फल सिद्धान्त सम्बन्धी कुछ मौलिक बातों पर आगे चलकर हम विचार करेंगे।

वेद का पवित्रता पर बल

हमने ऊपर बताया है कि मत-मतान्तर यह मानते हैं कि मनुष्य किसी व्यक्ति विशेष पर विश्वास या पूजा पाठ से कुकर्मों के दण्ड से बच सकता है। वेद पाप से बचाने का आश्वासन देता है पाप के फल से बचने या बचाने का तो वैदिक धर्म व दर्शन में प्रश्न ही नहीं उठता। वेद कहता है :—

'पवित्रवन्तः परिवाचमासते'*

अर्थात् पवित्रता के इच्छुक वेद का आश्रय लेते हैं। यजुर्वेद में कहा गया है :—

'माँ पुनीह विश्वतः' अर्थात् मुझे सर्वतः पवित्र कर।

अथर्ववेद में कहा गया है :—

'अस्मान् पुनीहि चक्षसे।'

प्रभो ! अपने दर्शनों के लिये हमें पवित्र करो।

चारों वेदों में मन, वचन एवं कर्म की पवित्रता के लिये सहस्रों प्रार्थनाएं हैं। वैदिक धर्म प्रभु-प्राप्ति के लिये पवित्रता को आवश्यक मानता है और पवित्रता को प्रभु-दर्शन का फल भी मानता है। वैदिक सिद्धान्त को सुस्पष्ट करने के लिये हम यहां ऋषि दयानन्द जी महाराज के अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश का एक प्रमाण देना उपयोगी समझते हैं :—

* ऋग्वेद 9.733

प्रार्थना का फल

"प्रश्न— परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए या नहीं ?

उत्तर— करनी गाहिए।

प्रश्न— क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा ?

उत्तर— नहीं।

प्रश्न— तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना ?

उत्तर— उनके करने का फल अन्य ही है।

प्रश्न— क्या है ?

उत्तर— स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

ऋषि जी ने फिर लिखा है :—

प्रश्न— ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं ?

उत्तर— नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाता और सब मनुष्य महापापी हो जाएं।"

प्रभु की कल्याणी पावमानी वेद वाणी व महर्षि के वचनों के प्रमाण देकर हमने स्पष्ट किया है कि वैदिक धर्म पाप की प्रवृत्ति एवं पाप मार्ग से बचकर पुण्य कर्म की प्रेरणा देता है। वेद सर्वथा यह आश्वासन नहीं देता कि पूजा-प्रार्थना उपासना से तुम्हारे पाप कर्म का दण्ड तुम्हें नहीं मिलेगा। संसार में अन्याय व भ्रष्टाचार क्या है ? यही ना ! कि एक व्यक्ति दनुजता का रूप धार कर, संसार में उपद्रव करे अथवा उद्दण्डता का मूर्त्तरूप बन जाए और उसे उसके किए का दण्ड न मिले। दूसरों के अधिकारों का अनादर

कर, अनधिकार चेष्टा अथवा अयोग्य व अदक्ष व्यक्तियों की मन-मानी ही तो भ्रष्टाचर है।

वेद ने जहाँ कर्म फल सिद्धान्त को मान्यता दी है वहां इस सिद्धान्त की विरोधी मान्यताओं 'भगवान् भक्तों के बस में है, भगवान् भक्तों के कुकर्मों को क्षमा कर देता है' आदि को झुठलाया है। महर्षि ने उपासना का फल गुण, कर्म एवं स्मभाव का सुधार निरभिमानना, उत्साह व सहाय का मिलना बताकर मानव जाति को आत्मोन्नति व चरित्र निर्माण का कल्याण मार्ग दर्शाया है। यही विश्व-शान्ति का मूल-मन्त्र है। वेद कहता है। **'विश्वस्य मिषतोवशी'** सम्पूर्ण विश्व उस प्रभु के वश में है।

फ़ारसी के एक कवि ने लिखा है :—

'बर मन मनिगर बर कर्मे ख्वेश निगर।'

अर्थात् मुझ कुकर्मी की ओर मत देख तू अपनी दया-दृष्टि की ओर देख।

एक मुस्लिम कवि ने लिखा है :—

कह देंगे साफ़ दावरे महशर के रूबरू।
हां हां गुनाह किए तेरी रहमत के ज़ोर पर॥

अर्थात् हम प्रलय के दिन अल्लाह से स्पष्ट कह देंगे कि हमने तेरी दया व क्षमा के बल पर जी मर कर पाप किए। सदाचार की कैसी सुन्दर शिक्षा है?

इस मलीन हीन मनोवृत्ति ने अगणित मानवों को पतनोन्मुख किया है। इसी भावना ने अनेकों के मन में आत्मोन्नति की भव्य भावनाओं को उभरने ही नहीं दिया। जीवन सुधार का विचार पैदा ही क्यों हो? इस विचार ने सदाचार के भवन की दीवारों

में दराड़ें पैदा कर दीं। ईश्वर की दया-दृष्टि व क्षमा के भरोसे मनुष्यों ने अपना आत्म निरीक्षण ही छोड़ दिया। मनुष्यों का चरित्र भी गया और मानवों ने आत्मगौरव भी खोया। मनुष्य का लोक एवं परलोक दोनों बिगड़ गये।

ऋषि दयानन्द का महान् उपकार है कि उसने इस भ्रान्ति को दूर किया कि ईश्वर दयालु है इसलिए पाप क्षमा कर देगा। महर्षि ने लिखा है ईश्वर दयालु है और न्यायकारी भी। ऋषि ने लिखा है दया और न्याय परस्पर विरोधी गुण नहीं। दोनों का प्रयोजन एक ही है। जितना किसी ने बुरा कर्म किया हो उसको उतना ही दण्ड देना चाहिए। यह न्याय है। अपराधी को दण्ड न दिया जाए तो दया का नाश हो जाए। दण्ड देकर अपराधी को पाप से बचाना दया है। दूसरों को उसके अत्याचार से बचाना दया है। इस प्रकार न्याय और दया में नाममात्र का भेद है। ईश्वर दयालु है यह दुहाई मचाकर कोई किये हुए कर्म के फल से नहीं बच सकता। ईश्वर न्यायकारी भी है।

जीव की स्वतन्त्रता

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। यह वैदिक धर्म की एक मुख्य मान्यता है। अवैदिक मत जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं मानते परन्तु व्यवहार में विवशता के वशीभूत वैदिक सिद्धान्त का आश्रय लेने पर बाधित होते हैं। संसार की सब भाषाओं में और सब देशों में अच्छा व बुरा ये दो शब्द प्रयुक्त होते हैं। सब मतवादी इन शब्दों का प्रयोग करते हैं। प्रश्न यह है कि जब जीव कर्म करने में ही स्वतन्त्र नहीं तो अच्छे व बुरे का प्रश्न कैसे पैदा हो गया? यदि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं तो फिर किसी भी मत का बड़े से बड़ा व्यक्ति (संस्थापक भी) अच्छा नहीं कहा जा सकता। यदि वे (नबी, संस्थापक, सन्त लोग) अच्छे थे तो इस में उनका बड़प्पन क्या? यदि मेरा बनाया मकान सुन्दर है तो श्रेय

ईंटों को नहीं दिया जा सकता। ईंट की सुन्दरता उसके कारण नहीं अपितु ईंट बनाने वाले के कारण है। भवन सुन्दर है तो निर्माता के कारण।

वैदिक धर्म जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता को स्वीकार करके विश्व के मानवों को दायित्व-पूर्ण जीवन विताने की प्रेरणा देता है। वैदिक नागरिक अपने कर्म के लिये अपना दायित्व स्वीकार करता है। कर्म करके उसके दायित्व से वैदिक धर्मी भागता नहीं। कर्म स्वयं करना व दायित्व भगवान् या शैतान पर डालना यह कायरतापूर्ण अथवा अनैतिक नीति वैदिक धर्मी आर्यों को सर्वथा अमान्य है। Responsibility and Freedom (दायित्व व स्वतन्त्रता) यह वैदिक दर्शन की नैतिक मान्यताओं की जान है। सारे विश्व का आचार शास्त्र और सारे देशों का दण्ड विधान इसी सार्वभौमिक वैदिक दृष्टिकोण पर टिका हुआ है। न्यायालयों में न्यायाधीश क्या कहते हैं ? यही न ! कि अमुक को यह दण्ड दिया जाय क्योंकि उसने अपराध किया है और अमुक को छोड़ दिया जाय क्योंकि वह निरपराधी है। उसने आपत्तिजनक कार्य नहीं किया। जीव की स्वतन्त्रता में अवैदिक मतों के मानने वाले विश्वास करें या न परन्तु अपने-अपने राष्ट्र में शान्ति व्यवस्था रखने के लिए न्यायालयों में मनुष्यों को उनके किए हुए कर्म के लिए उत्तरदायी मानकर दण्ड दिया जाता है। एक मुस्लिम कवि ने इस वैदिक मान्यता के मर्म को समझकर मुसलमान तत्वज्ञानियों से इस्लाम पर चुभता व्यंग कसकर एक प्रश्न पूछा है :—

> खूब हंसी आती है मुझे हज़रते इनसान पर ।
> फ़ेले बद तो खुद करे लानत करे शैतान पर ॥

अर्थात् कुकर्म स्वयं करके शैतान के सिर सारा दायित्व थोप देना यह कहाँ की नैतिकता है ?

इस्लाम व ईसाई मत में तो जीव की स्वतन्त्र सत्ता के न होने के कारण जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता को मान्यता न मिल सकी परन्तु हिन्दुओं में भी वेद विमुख होने से यही भ्रमपूर्ण विचार फैल गया है कि "जो करता है परमेश्वर ही करता है।" मेरा ऐसा विचार है कि हिन्दुओं की इस पौराणिक मान्यता का कारण पुजारियों के उपवास (जिन्हें वे व्रत कहते हैं) तीर्थ यात्रा व प्रायश्चित सम्वन्धी कर्मकाण्ड का विधान तो है ही। इसका दूसरा कारण नवीन वेदान्त भी है। उपवास, यात्रा व प्रायश्चित की पौराणिक मान्यताएं यह सिद्ध करती हैं कि ईश्वर चाहे तो कुकर्मी को पुरस्कृत करदे, नर्क वाले को स्वर्ग में और स्वर्ग वाले को नर्क में भेज दे। इस प्रकार जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता एक ढोंग मात्र रह जाती है। जब उपवास मात्र से स्वर्ग मिल सकता है, पत्नी के उपवास से पति की आयु बढ़ सकती है, नदी नालों में स्नान से पाप कट सकते हैं और मनोकामनायें पूर्ण हो जाती हैं तो जीव के कर्म व कर्म करने की स्वतन्त्रता का कोई महत्त्व नहीं रहता।

नवीन वेदान्त में जीव की सत्ता को ही स्वीकार नहीं किया गया अतः जीव की कर्म की स्वतन्त्रता का प्रश्न ही नहीं उठता। पौराणिक कीर्तनकार की ताली की ताल हैं :—

'जो बिगड़े सो तेरा नाथ मेरा क्या बिगड़े।'

इन्हीं भावनाओं के वशीभूत गोस्वामी तुलसी दास जी ने भी लिखा :—

कोऊ हो नृप हमें का हानि।
चेरी छोड़ न भई मैं रानी॥

श्री स्वामी विवेकानन्द ने पुरुषार्थ व परमार्थ का सन्देश

देशवासियों को दिया परन्तु उनके जीवन को निम्न घटना से पता चलता है कि वह भी पौराणिक संस्कारों के कुप्रभाव से पूर्णरूपेण न बच सके। 'विवेकानन्द चरित' पुस्तक के लेखक श्रीयुत सत्येन्द्र मजूमदार ने अपनी उक्त पुस्तक (हिन्दी अनुवाद चतुर्थ संस्कार) के पृ० 419 पर लिखा है "30 सितम्बर को स्वामी जी सहसा क्षीर भवानी की ओर चल पड़े और उन्होंने यह आदेश दिया कि कोई शिष्या उनका पीछा न करे।"

फिर लिखा है "होमाग्नि के सम्मुख योगासन पर बैठे हुए विवेकानन्द महामाया के ध्यान में मग्न होने वाले थे। उसी समय सामने के टूटे हुए मन्दिर को देखकर उनके मन में विचार हुआ कि 'जिस समय मुसलमानों ने उस मन्दिर को तोड़ा था उस समय हिन्दू लोग क्या अपने बाहुबल द्वारा उन्हें नहीं रोक सकते थे? यदि मैं उस समय उपस्थित होता तो प्राणों की बाज़ी लगाकर के माता के मन्दिर की रक्षा करता, किसी भी तरह पवित्र मन्दिर का नाश न होने देता।'

'पर सहसा उन्होंने देव-वाणी सुनी......अपने कानों से सुना कि जगजननी सस्नेह भर्त्सना के साथ कह रही है—"यदि मुसलमानों ने मेरा मन्दिर विध्वस्त कर प्रतिमा को अपवित्र कर भी दिया है, तो इससे तेरा क्या? तू मेरी रक्षा करता है या मैं तेरी रक्षा करती हूँ?"

फिर लिखा है कि अगले दिन स्वामी जी ने संकल्प किया कि मैं भीख मांग कर भी उस मन्दिर के संस्कार का संकल्प पूरा करूंगा परन्तु फिर देव-वाणी हुई—जननी ने कहा, "यदि मेरी इच्छा हो तो क्या मैं सात मंजिल वाला सोने का मन्दिर इसी मुहूर्त में तैयार नहीं कर सकती हूँ? मेरी इच्छा से ही यह मन्दिर भग्न हो कर पड़ा हुआ है।" लेखक ने इस पर लिखा है कि इस घटना से

"कर्मयोगी का विद्या का अहंकार चूर्ण हुआ।" कुछ भी हो इस प्रकार के विचारों से राष्ट्र का पतन होता है। बुराई बढ़ती है घटती नहीं। जब जगज्जननी ही अपना अपमान स्वयं कराती है तो फिर अन्यायी व पापी किस को कहें ?

सिख सम्प्रदाय के गुरुओं की वाणी में अनेक स्थानों पर जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता के वैदिक सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। यथा :—

'आपे बीजि आपे ही खाहि।' (जपजी)
'जैसा करे सु तैसा पावे, आप बीज आपे ही खावे।'
(महला 1 शब्द 6)
'जैसा बीजै तैसा खावै।' (महला 4 शब्द 54)

इस प्रकार के स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए भी सिख सम्प्रदाय वाले भी नवीन वेदान्त के प्रभाव में वही राग अलापते हैं :—

'मानुष के कुछ नहीं हाथ'
'करे कराए आपे आप।'

ये विचार किसी भी देश की प्रगति में साधक नहीं हो सकते। बाधक अवश्य हैं। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने बड़े मार्मिक शब्दों में लिखा हैं :—

"जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है, उसको जो कोई तोड़ेगा, वह सुख कभी नहीं पावेगा।"*

वेदादेश

भगवान् के वेद ज्ञान की घोषणा है :—

* सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 7

'कृतं स्मर' अर्थात्— हे मनुष्य अपने किये हुए कर्म को स्मरण कर। फिर कहा है :—

'जम्भयाता अनप्नसः।'* कर्महीन नष्ट हो जाते हैं।

वेद ने कर्म की महिमा का गान करते हुए कहा है :—

'अकर्मा दस्युः'** अर्थात्— कर्म न करने वाला ही दस्यु है।

वेद कहता है :—

'सुकर्माणः सुरुच।'***

अच्छे कर्म करने वाले यशस्वी होते हैं। इससे स्पष्ट है कि वेद जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र मानता। वैदिक दर्शन के अनुसार उन्नति की सब राहें जीव के लिए खुली हैं। वेद ने उद्बोधक शब्दों में कहा है :—

'इतो जयतो विजय संजह जह।'****

हे जीव ! तेरी यहां जय हो, वहां जय हो, जय ही जय प्राप्त कर, कुछ लोग वेद के कर्म फल सिद्धान्त व पौराणिकों के 'भाग्य-वाद', 'विधाता के विधान' व 'ईश्वराज्ञा' को एक ही बात समझते हैं। यह उनकी भूल है। वेद के प्रकाण्ड विद्वान् श्री स्वामी समर्पणानन्द जी ने अपने ग्रन्थ काया कल्प में लिखा हैं :—

भाग्यवाद कर्मफल सिद्धान्त का शत्रु है।

"ईश्वर के सबसे बड़े शत्रु उसके यह भाग्यवादी भक्त हैं। वे भूल जाते हैं कि जिस भगवान ने हमें विशेष अवस्थाओं में जन्म दिया है उसीने हमें उन्हें अपने अनुकूल करने की शक्ति और आदेश

* ऋ० 2-23-9
** ऋ० 10-22-8
*** अथर्व 18-3-22
**** अ० 8-8-24

भी तो दिया है। हाथ, पैर, आँख, नाक, कान और सब से बढ़कर सिर यह सब मूल्यवान् सम्पित्त भगवान ने भाग्य के साथ लड़कर उसे जीतने के ही लिए दी है। भगवान् ने कहा है:—

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनरसि आप्नुहि श्रेयांसम् । अतिसमम् क्राम ।*

अर्थात— तू शस्त्रों को काटने वाला शस्त्र है, तू दूषणों को दूषित कर देने वाली महाशक्ति है, तू चिन्ताओं का पहले से चिन्तन करने वाला अनागस विधाता है। उठ ! जो तेरे साथ की पंक्ति में हैं उन्हें पीछे छोड़ और जो अगली पंक्ति में हैं, उनमें जा मिल।'

एक आर्य महामुनि पाणिनिजी ने प्राचीन काल में अपने ग्रन्थ अष्टाध्यायी में एक सूत्र लिख कर वैदिक दर्शन के एक गूढ़ रहस्य का मानव मात्र के हित के लिए प्रकाश किया। वह सूत्र है;—

"स्वतन्त्रः कर्त्ता।" कर्त्ता वह है जो स्वतन्त्र है। जो स्वतन्त्र नहीं वह कर्त्ता नहीं।

जैसा कि हमने पहले भी लिखा है कि आज भले ही कोई जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता के वैदिक सिद्धान्त को माने या न माने परन्तु व्यवहार में सारे मानव समाज ने वैदिक धर्म का यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है। "मैंने यह कार्य किया है"। ये वाक्य प्रतिदिन हम प्रयुक्त करते हैं। न्यायालयों में निर्णय देते हुये न्यायाधीश लोग पाणिनि मुनि के सूत्र 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' की सत्यता की पुष्टि करते हैं।

कुछ लोगों की यह आपत्ति है कि जब हमारा वर्तमान जन्म हमारे पूर्व कर्मों का फल हैं तो जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता

* अथर्व 2-11-1

कहाँ रही ? फिर तो हम परिस्थितियों के दास हैं। हमारे अधिकार व हमारे स्थान इस संसार में जब पूर्व निश्चित हैं तो हम कर ही क्या सकते हैं ? श्री डाक्टर गोकुलचन्द नारंग ने इसका उत्तर देते हुए लिखा है :—

"Rain comes down from the clouds and we can not stop it but we can escape being drenched if we carry a good umbrella or take cover. An arrow once shot cannot be recalled but one can avoid being hit by taking cover or opposing a good shield against it. In the same way, the effect of our past Karma is inevitable, but the virtuous energy displayed in this life can, if enough, successfully ward it off or mitigate it. Opportunity, in fact series of opportunities are available to us........."*

परिस्थिति व अन्तः स्थिति

श्री स्वामी समर्पणानन्द जी के इसी विषय में कुछ विचार हम पीछे उद्धृत कर आए हैं। उन्होंने इसी विषय पर कायाकल्प में एक और प्रकरण में लिखा है :—

"संसार भर के दुराचारी परिस्थिति की आड़ में घोर से घोर अत्याचार करके परिस्थिति की दुहाई दे छोड़ते हैं। जो स्थान कभी कर्मफल, प्रारब्ध, भाग्य तथा कलियुग ने लिया था वह आज परिस्थिति ने लिया है। यह परिस्थिति क्या है बीसवीं शताब्दी के कर्महीन आलसियों का महा कवच है।"

इसी पुस्तक में स्वामी जी ने लिखा है :—

* Glorious Hinduism

"जहां अन्त स्थिति बलवान् होती है, वहां सुख और शान्ति निवास करते हैं, जहाँ परिस्थिति बलवान् होती है, वहाँ अनीति, अत्याचार और दुःख निवास करते हैं, इसलिए हमारा मुख्य ध्येय अन्तः स्थिति का सुधार होना चाहिए।"

वैदिक आशावाद

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने लिखा है :—

"Thus Vedic Philosophy is always optimistic. It helps us in always hoping for the better No eternal hell. No eternal heaven. No eternal doom. The door of bless is always open."*

अर्थात् वैदिक दर्शन सदैव आशावादी है। यह सदा हमें कल्याण अथवा भलाई की आशा बंधाता है। न सदा के लिए नर्क और न सदा के लिए स्वर्ग। आनन्द का द्वार, कल्याण का द्वार सदा खुला है। यहाँ यह स्मरण रहे कि वैदिक धर्म मुक्ति से लौटने का सिद्धान्त मानता है। ऋषि दयानन्द का तर्क सरल व स्पष्ट है कि जिसका आदि है उसका अन्त है। जो बना है सो टूटेगा। जो टूटा है सो बना था। सीमित कर्म के लिए असीम फल नहीं हो सकता अतः जीव मोक्ष का आनन्द भोग कर अवश्य लौटता है।

इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए एक विद्वान ने लिखा है :—

"The law of karma thus does not do away with free will but constitutes the charter of freedom."

इस प्रकार हम देखते हैं कि कर्म फल सिद्धान्त जीव की

* Vedic Philosophy Page 14.

स्वतन्त्र इच्छा की अवेहलना नहीं करता अपितु स्वतन्त्रता का अधिकार पत्र है।

डा० राधाकृष्णन् ने भी वैदिक आशावाद को बहुत सुन्दर शब्दों में बताया है :—

"Every saint has a past and every sinner has a future."

दर्शन में जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता

कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्त्तुम् ।

जीव चाहे तो करे, चाहे तो न करे और चाहे तो विपरीत कर्म करे। आचार शास्त्र (Ethics) का सम्बन्ध जीव के कर्मों से है। यदि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं तो आचार शास्त्र के लिए विश्व में कोई स्थान नहीं।

श्री डार्विन साहेब ने विकासवाद में 'प्रकृतिक निर्वाचन' का सिद्धान्त रखा है। श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने लिखा है:—

Natural selection is a dignified name for struggle for existence or survival. The struggle lies in selection, rejecting the unfavourable and letting live the favourable.*

निर्वाचन व स्वतन्त्रता

फिर लिखा है :— "All selection implies struggle; an effort to choose out of two or more things."*

अर्थात् सब प्रकार के निर्वाचन में एक संघर्ष होता है।

* Philosophy of Dayanand Page 333

निर्वाचन दो या दो से अधिक वस्तुओं में से एक को चुनने के यत्न का नाम है। इससे सिद्ध हुआ कि हम मानव जीवन का अवलोकन जिस दृष्टि से भी करें जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता का सिद्धान्त हमें मानना ही पड़ता है।

दया और न्याय

इस के बारे पहले भी कुछ लिखा जा चुका है। ईश्वर दयालु है किंवा न्यायकारी ? मत पंथों में इस विषय में भी भ्रान्ति है। इस सरल सी बात को उलझन बना दिया गया है।

स्वामी सत्यप्रकाश जी लिखते हैं :—

"The mercy of God lies in his being just. His justice is the greatest mercy. He is kind to us. because He is just and merciful both."*

नैतिक व अनैतिक में भेद

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने बड़े मार्मिक ढंग से लिखा है :—

"If it is so. Then there is no distinction between life and no-life, between a moral being and an unmoral being. between a virtuous man and a sinner."**

भाव यह है कि यदि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं तो फिर जड़ व चेतन में भेद क्या रहा ? फिर एक नैतिक व अनैतिक

---

* A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand Page 197-198

** Philosophy Of Dayanand Page 389.

जीवन में क्या भेद है ? फिर एक सत्कर्मी धर्मात्मा व कुकर्मी दुष्ट में क्या भेद हुआ ?

आज सारा मानव समाज शोषण के विरुद्ध चिल्ला रहा है। प्रायः सब देशों ने अपने-अपने विधान में अपने नागरिकों को शोषण से बचाने का आश्वासन दिया है।

यही कर्म फल सिद्धान्त का प्रयोजन है। कर्म करने की स्वतन्त्रता ही नैतिकता व स्वाधीनता के सिद्धान्त का मूल मन्त्र है। एक विचारक ने लिखा है :—

"Just as we deem it a charter of freedom that one cannot in Law be robbed of the fruit of One's labour, the Law of Karma is the Magna Carta of free will"

जैसे हम यह अधिकार पत्र समझते हैं कि राज्य अधिनियम के अनुसार किसी भी व्यक्ति को उसके श्रम के फल से वंचित नहीं किया जा सकता ऐसे ही कर्म फल सिद्धान्त जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता का यशस्वी अधिकार पत्र है।

स्वतन्त्रता व नैतिकता का अटूट सम्बन्ध है। स्वामी सत्यप्रकाश जी ने लिखा है :—

"Freedom imposes responsibilty."*

> "The universe with its beauties and laws and harmonies, is nothing to idiot mind caged in matter." —मुनिवर गुरुदत्त जी विद्यार्थी

---

* Light Within Page 49

पांचवां अध्याय

कर्म फल की व्यवस्था

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है हमारे इसी वैदिक सिद्धान्त का पूरक यह सिद्धान्त है कि 'जीव फल के भोगने में परतन्त्र है।' गीता का निचोड़ ही यह है कि कर्म करना हमारा अधिकार है फल ईश्वर के आधीन है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में इस विषय पर प्रकाश डालते हुए एक प्रश्न उठाया है।

प्रश्न :—जीव स्वतन्त्र है व परतन्त्र ?

उत्तर:—"अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है।"

सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में भी देव दयानन्द ने लिखा है :—

"जीव अपने कर्मों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि करने में स्वतन्त्र है।"

सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखा है :—

"अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र परन्तु जब वह पाप कर चुकता है तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है।"

यद्यपि अन्य मतों ने कर्मफल सिद्धान्त को मान्यता नहीं दी तथापि कुरान आदि पुस्तकों में कहीं कहीं कर्मफल के अटल नियम का उल्लेख है। इन मतों ने कर्मफल की एक व्यवस्था या नियम

नहीं माना। मानें भी कैसे ? यदि सृष्टि में 'व्यवस्था' मतवादियों को दीख जाए तो चमत्कार कहां जाएंगे ? यदि चमत्कार न रहें तो अवैदिक मत कैसे रह सकेंगे ?

कुरान में कहीं कहीं कर्मों के लिये दुगने तिगुने फल व दण्ड की चर्चा है। इससे स्पष्ट है कि कर्म फल किसी व्यवस्था के रूप में मतवादियों को मान्य नहीं। ईश्वर की इच्छा पर सब कुछ निर्भर है।

वेद का घोष है :—

'सविता सत्य धर्मा'* परमेश्वर का सृष्टि नियम सत्य है।

वेद ने कहा है :—

'सत्यं बृहद्दतं उग्रम्'**

अर्थात्— सत्य व वयवस्था ये आचार शास्त्र व सामाजिक संगठन के प्रथम दो स्तम्भ हैं। वेद पुकार पुकार कर कहता है :—

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥***

भाव यह है कि संसार में वायु नदियाँ व औषधियां उसी के लिये सुखदायी हैं जो ईश्वर की व्यवस्था (ऋत) के अनुसार चलते हैं।

वैदिक धर्म का प्रभु की रचना के अटल नियमों में कैसा अटल विश्वास है इसका एक सुन्दर प्रमाण ऋग्वेद का निम्न मन्त्र है :—

ओ३म् सूर्यचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथ्वीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

* अ० 1-4-1 ** अ० 12-1-1 *** ऋग्वेद

अर्थात् जैसे पहले कल्प में सूर्य, द्यौलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष तथा लोक-लोकान्तर रचे गये वैसे ही इस कल्प में बनाए गये। वैदिक धर्म सृष्टि को प्रवाह से अनादि मानता है। सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पश्चात् सृष्टि। यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है। परमात्मा की इस सृष्टि के नियम भी वही हैं जो पहले कल्पों में थे। ईश्वर अपनी व्यवस्था को भंग नहीं करता।

श्री डा० सत्यप्रकाश ने लिखा है :—

"Perhaps lawlessness would have gone more against the theistic conception than the existence of law."*

सम्भवतः व्यवस्था की उपेक्षा अव्यवस्था, आस्तिकवाद के चविार का अधिक निशेध करती है।

वैदिक धर्म व्यवस्था को ही जीवन का सौन्दर्य मानता है। मतवादी इसके विपरीत चमत्कारों को किसी व्यक्ति की आत्मिक शक्ति का प्रमाण मानते हैं। पं० चमूपति जी ने लिखा है।

"मूर्खों में धर्म का आधार चमत्कार होता है। ऐसा होना स्वाभाविक है। धर्म इन्द्रिय ग्राह्म जगत से ऊपर की ओर संकेत करता है। धर्म के मुख्य विषय आत्मा और परमात्मा हैं।"**

ईश्वर की अटल व्यवस्था की ओर संसार का ध्यान आकृष्ट करके ऋषि ने मानव समाज का भारी उपकार किया है। यह उन की महान देन है। कर्मफल सिद्धान्त के मर्म को समझते हुए ऋषि के लिखे शब्द '<u>ईश्वर की व्यवस्था के आधीन</u>'। अत्यन्त सारगर्भित हैं।

---

* A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand Page 208.

** ऋषि का चमत्कार पृ० 1

जैन आदि मत व कुछ इतर लोग सृष्टि नियम में तो विश्वास रखते हैं परन्तु कर्मफल दाता अथवा नियन्ता को नहीं मानते । कुछ ऐसे ही लोगों ने प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री आईनस्टाईन से कहा था कि संसार का नियन्ता नहीं यह यिश्व अपने कार्यक्रम (Routine) से यूं चल रहा है। महान् वैज्ञानिक ने उत्तर में कहा, "The nonsense is not merely nonsense. It is objectionable nonsense."

अर्थात् यह अनर्थक बात न केवल निरर्थक है अपितु आपत्ति-जनक निरर्थकता है। हमारे पाठक कल्याणी वाणी वेद के निम्न शब्दों पर विचार करें और महान् Einstein के उपरोक्त वाक्य का इससे मिलान करें :—

ऋतंच सत्यं चाभिद्धात् तपसोऽध्यजायत्' *

अर्थात् ऋत (व्यवस्था) व सत्य का आविर्भाव उसी सर्वज्ञ व क्रियाशील परमेश्वर से हुआ। सम्भवत: संसार के किसी भी ग्रंथ में व्यवस्था (ऋत) की (Law and order) की इतनी चर्चा व इतना महत्त्व नहीं दर्शाया गया जितना कि मानव-धर्म वेद में है।

ऋषि दयानन्द जी महाराज का महान् उपकार है कि उन्होंने अपना सर्वस्व होम कर वेद के भेद खोले। ऋषि के महान् उपकारों में एक यह भी है कि उन्होंने 'ईश्वर की व्यवस्था के आधीन' इस दार्शनिक सूत्र को देकर महान् सत्य का प्रकाश किया। इसी सत्य को महान् Einstein ने अपने उपरोक्त वाक्य में व्यक्त किया है।

ईश्वर के अटल नियम में विश्वास ही मनुष्य को आशावादी, उत्तरदायी, साहसी व प्रगतिशील बना सकता है। जब सृष्टि नियम की स्थिरता में ही हमारा विश्वास नहीं तो वैज्ञानिक

* ऋ० 10-19-1

अनुसंधान क्या करेंगे ? बड़े सौभाग्य की बात कि किसी मत को मानने वाला व्यक्ति गम्भीरता से सृष्टि नियम में फेरबदल या अनियमितता नहीं मानता। यदि सृष्टि नियम ही टूटने लगें तो हमारे किये हुए कर्मों का पूरा फल अनिश्चित हो जाये । व्यक्ति हताश, निराश व उदास होकर बैठ जाएं। अकर्मण्यता का राज्य हो जाने से दुःख व दरिद्रता का अखण्ड शासन सारे विश्व में हो जाए। श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने लिखा है:—

"Everything depends upon chance. Whatever happened in the past was due to chance. Whatever is happening in the present is by chance. And whatever will happen in future will depend on chance. Such mentality offers no incentive to man. It makes a man lazy, irresponsible and reckless."*

अर्थात् जो कुछ हो रहा है और जो कुछ होगा सब अकस्मात् है। ऐसा विचार कर्म में प्रवृत्त करने की मानव को प्रेरणा नहीं दे सकता। इससे मनुष्य प्रमादी, अनुत्तरदायी व धृष्ट बनता है। वैदिक धर्म का मतों से यह एक मौलिक भेद है।

विचारशील मानवों को हम पूज्य स्वामी श्री सत्य प्रकाश जी के ये शब्द हृदाङ्गम कराना चाहते हैं :—

"Order would certainly appear to be nature's first law."**

---

* The World As We View It Page 141

** A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand Page 205

श्री पं० चमूपति जी ने इस विचार की विवेचना करते हुए लिखा है :—

"यदि जीवन केवल-मात्र आकस्मिक घटनाओं की शृंखला है तो कोई सुकर्म क्यों करे ? पुरुषार्थ क्यों करे ? मिलता तो वही है जो परमात्मा कहता है । और (अथवा या) प्रकृति ला देती है। इस धारना में न वीरता है न बुद्धिमत्ता।"*

जीव पाप क्यों करता है ?

प्राय: प्रश्न किया जाता है कि जीव पाप क्यों करता है। यदि हम पाप करते हैं तो ईश्वर हमें रोकता टोकता क्यों नहीं । पहले बताया जा चुका है कि वैदिक धर्म जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र मानता है इसलिये परमात्मा के रोकने-टोकने का प्रश्न ही नहीं उठता। परमात्मा ने जीव के मार्ग-दर्शन के लिए भले बुरे के ज्ञान के लिये वेद का प्रकाश दिया है। हृदयों में व्यापक ईश्वर सदैव सत्कर्म की प्रेरणा देता है। यदि जीव फिर भी पाप करता है तो ईश्वर टोके क्यों ? वह अपनी न्याय व्यवस्था के अनुसार फिर दण्ड देगा। यदि परीक्षा भवन में छात्र ठीक उत्तर नहीं देता तो अध्यापक टोकेगा नहीं। हां ! परीक्षा से पूर्व वह ज्ञान अवश्य देता है। मत-मतान्तर इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते कि जीव पाप क्यों करता है। वे तो यह मानने हैं कि जीव को परमेश्वर ने बनाया है। यदि परमेश्वर ने बनाया है तो पाप करने वाला क्यों बनाया ? ऋषि दयानन्द जी ने इस शंका का बड़ा सुन्दर उत्तर दिया है :—

"मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है । तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से

* वैदिक सिद्धान्त पृ० ४४

सत्य को छोड़ कर असत्य में झुक जाता है।"*

वेद भी कहता है :—

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे।
मृढा सुक्षत्र मृढय ॥**

अर्थात् जीव अपनी दुर्बलता, दीनता अथवा अल्पज्ञता के कारण कर्त्तव्य मार्ग से भटक जाता है।

वेद का यह मन्त्र 'जीव पाप क्यों करता है ?' इस जटिल दार्शनिक समस्या का जो उत्तर देता है वह वेद ज्ञान की अपनी मौलिक देन है। धर्म के इस मर्म को समझकर ही हम अपना व विश्व का सुधार व उपकार कर सकते हैं।

एक अन्य भ्रान्ति

एक अन्य भ्रान्ति कुछ लोगों में पाई जाती है कि व्यवस्था ही विश्व की वियन्ता है। स्वामी सत्यप्रकाश जी इस पर लिखते हैं:—

"We must remember that universe is not run by laws. The running of the universe implies that there is particular law and order."***

* सत्यार्थ प्रकाश भूमिका ** ऋग्वेद 7-89-3

*** A Critical Study Of Philosophy Of Dayanand Page 208.

लेखक की कुछ अन्य पुस्तकें

1- 'महर्षि का ऐक्यवाद'
अपने विषय की पहिली पुस्तक।

2- 'अखण्ड ज्वाला'
हुतात्माओं के जीवन पर प्रेरणाप्रद एवं खोज
लेखों का संग्रह।

3- 'एक मनस्वी जीवन'
भारतीय स्वाधीनता संग्राम में न्यायलय का अप
करके दण्डित होने वाले सर्वप्रथम सत्याग्राही श्री
मनसाराम जी वैदिक तोप का खोजपूर्ण जीवन च

4- 'प्रेरणा कलश' प्रथम खण्ड
आर्यसमाज के इतिहास की गौरवपूर्ण घटन
शिक्षाप्रद कहानियों का अपूर्व संग्रह।

5- 'महर्षि का विषपान अमर बलिदान'
महर्षि दयानन्द जी के बलिदान पर लेखक के वि
अध्ययन एवं अनुसंधान की परिचायक अपने वि
की प्रथम व बेजोड़ पुस्तक है।

6- 'वीर संन्यासी'
लोह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का
जीवन चरित्र। आर्यसमाज के साहित्य में यह प्र
जीवन चरित्र है जिसके लिखने में चरित्र नायक
डायरियों का लेखक ने व्यापक लाभ उठाया है।

7- 'भारतीय स्वाधीनता संग्राम व आर्यसमाज'
इतिहास की दृष्टि से लिखी गई अपने विषय की प्र
पुस्तिका।

8- 'मूल की भूल' 9- 'भूल की धूल' 10- 'भूल भुलै

हमारे आजीवन सर्वाधिकारी

पूज्यपाद स्वामी सर्वानन्द जी महाराज

दीनानगर।

आजीवन सदस्य

अबोहर:- 1 प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु 2 श्री दीना नाथ सिडाना
कुमारी यजुर्वेद आर्या धर्मपत्नी प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु 4 श्रीमती
रस्वती सेतिया 5 मै० राजकुमार कशमीरीलाल 6 महात्मा
ांधी विद्यालय (डी.ए.वी.) 7 श्री फकीरचन्द 8 श्री मुकन्दलाल
नेजा 9 श्री कृष्णकुमार बोगरा 10 श्री राजेन्द्र चावला
1 श्री विजय मक्कड़ 12 श्री अशोक आर्य 13 स्मृति महाशय
ख्तावरलाल 14 प्रा० के. के. शर्मा 15 श्री सुखराम आर्य
6 श्री विनोद आहूजा 17 प्रा० रोहतासंसिंह फोर 18 श्री
लवन्तराय झाम्ब 19 प्रा० हृदयकुमार कौल 20 सेठ मुरारी
ल आहूजा रुई व्यापारी 21 श्री केवल मिडाना 22 सेठ
ावानदास जैन (सदस्य नगर पालिका) 23 डा० श्रीराम चौधरी
श्री किशनाराम आर्य खीम्पांवाली 25 चौ० किशनाराम रामसरा
श्री गिरीश गुप्ता भटिण्डा 27 बाबू बृजलाल गुप्त टोहाना
श्री बलदेवकृष्ण रामामण्डी 29 श्री सुन्दरलाल भाटिया
पुर 30 श्री राकेश आर्य गिदड़बाहा 31 आर्यसमाज गिदड़बाहा
म० वेदप्रकाश आर्य मलोट 33 श्री ओमप्रकाश ग्रोवर मलोट
डा० ओमप्रकाश मलोट 35 श्री कर्मचन्द सेतिया फाजिलका
डा० ओमप्रकाश गुप्त हिसार 37 म० हंसराज ट्रस्ट बरेटा
भोपाल वाला आर्य हा० स्के० स्कूल श्री गंगानगर 39 डा०
न्द्र आर्य अमेरिका 40 बाबू पुरुषोत्तमलाल घूरी।

ओ३म्

हमारे उत्कृष्ट

प्रकाशन

पूज्यपाद स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्व

1. Enchanted Island 1-50

प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' कृत

1. हृदय तन्त्री (प्रथम खण्ड) भजन स...
2. हृदय तन्त्री (द्वितीय खण्ड) भजन संग्रह 0-75
3. महर्षि का विषपान अमर बलिदान 0-65
4. प्रेरणा कुटी 1-50
5. श्री सत्य साईं बाबा? 0-30
6. प्रेरणा कलश (प्रथम खण्ड) 3-50 7. जगराता? 0-20
8. एक मनस्वी जीवन 1-25 9. अतीत के झरोखे से 2-00
10. छत्रपति शिवाजी महाराज का राज्याभिषेक 0-30

अन्य प्रकाशन

1. महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द एक तुलनात्मक अध्ययन लेखक– डा० भवानी लाल भारतीय 3-00
2. पं० शान्ति प्रकाश के शास्त्रार्थ —संपादक अशोक आर्य 0-40
3. मधुमती रचियता—प्रो० ओंकार मिश्र 'प्रणव' 1-20
4. हवन यज्ञ पद्धति संपादक—पं० नारायणराव 1-25
5. हमारा फाजिलका लेखक— योगेन्द्र गोयल 1-20

प्राप्ति स्थान— अशोक 'आर्य' प्रकाशन मन्त्री

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय 'प्रकाशन मन्दिर'

आर्य युवक समाज, अबोहर–152116